UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180097

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 833.11 / M69K Accession No. G.H. 1475

Author मोहनकृष्ण दर ।

Title केसर के फूल । 1955

This book should be returned on or before the date last marked below.

केसर के फूल

हमारी सचित्र लोक-कथा-माला

काश्मीर की लोक-कथाएं	(१)	नन्दलाल चत्ता १।)
काश्मीर की लोक-कथाएं	(२)	नन्दलाल चत्ता १॥)
विन्ध्य-भूमि की लोक-कथाएं		श्रीचन्द जैन-श्रीवास्तव १)
ब्रज की लोक-कथाएं		आदर्शकुमारी यशपाल १।)
पंजाब की लोक-कथाएं		पंछी तथा बेदी १।)
बंगाल की लोक-कथाएं		मन्मथनाथ गुप्त १॥)
फ्रांस की लोक-कथाएं		मन्मथनाथ गुप्त १॥)
मालवा की लोक-कथाएं		श्याम परमार १॥)
आंध्र की लोक-कथाएं		के० राजशेषगिरिराव १॥)
राजस्थान की लोक-कथाएं		पुरुषोत्तम मेनारिया १॥)
गढ़वाल की लोक-कथाएं		गोविन्द चातक १॥)
नेपाल की लोक-कथाएं		गोविन्द चातक १॥)
चीन की लोक-कथाएं		हंसराज 'रहबर' १)
हरियाना की लोक-कथाएं		राजाराम शास्त्री १॥)
मनोरंजक लोक-कथाएं	(१)	नन्दलाल चत्ता १।)
मनोरंजक लोक-कथाएं	(२)	नन्दलाल चत्ता १।)
हमारी लोक-कथाएं	(१)	हंसराज 'रहबर' १॥)
हमारी लोक-कथाएं	(२)	हंसराज 'रहबर' १॥)
सौराष्ट्र की लोक-कथाएं		प्रवासीलाल वर्मा १॥)
हिमाचल की लोक-कथाएं		सन्तराम वत्स्य १॥)
उत्तर भारत की लोक-कथाएं	(१)	सावित्री देवी वर्मा १।)
उत्तर भारत की लोक-कथाएं	(२)	सावित्री देवी वर्मा १।)
उत्तर भारत की लोक-कथाएं	(३)	सावित्री देवी वर्मा १।)
निमाड़ी की लोक-कथाएं	(१)	कृष्णलाल 'हंस' १।)
निमाड़ी की लोक-कथाएं	(२)	कृष्णलाल 'हंस' १।)
छत्तीसगढ़ की लोक-कथाएं		चन्द्रकुमार १॥)
रूस की लोक-कथाएं		हंसराज 'रहबर' १॥)
अरब की लोक-कथाएं		जगन्नाथ शर्मा १।)
जर्मनी की लोक-कथाएं		जगन्नाथ शर्मा १।)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

केसर के फूल

लेखक
मोहनकृष्ण दर

प्रस्तावना
जवाहरलाल नेहरू

सादर समालोचनार्थ

१९५५
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली–६

मूल्य दो रुपये

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट, दिल्ली–६

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

लेखक की अन्य रचनाएँ
महान आत्मा
सूखे पत्ते
सप्त सरोज
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ६

मुद्रक
क्रॉनिकल प्रेस
ोरी गेट, दिल्ली–६

जननी को,
जन्मभूमि
कश्मीर
को

ओर से
सम्मत्यर्थ

प्रस्तावना —

केसर के देश में

जवाहरलाल नेहरू

कश्मीर की सैर का मैं चिर अभिलाषी था। उसकी याद मेरे दिल और दिमाग़ पर छा गई। मैंने कई वर्ष पूर्व कश्मीर-यात्रा की थी; मेरे दिल में उन पहाड़ों और घाटियों की स्मृति अभी जाग्रत थी। मन में एक संघर्ष हो रहा था—क्या मैं अपने आवश्यक काम में जुटा रहूँ, या उसे छोड़, आवारा फिरूँ और अपनी आँखों की तृषा और मन की लालसा को तृप्त करूँ।

दिन बीतते ही चले गये। आयु भी बढ़ती गई, और मुझे आशंका-सी होने लगी। प्रौढ़ अवस्था के भी कुछ गुण हैं, और चीनी लोगों ने तो इसकी प्रशंसा में गीत गाये हैं। मुँह पर दानाई झलकती है और सौन्दर्य के प्रत्येक पहलू को समझने और उसकी सराहना करने की योग्यता आ जाती है। किन्तु साथ ही, जीवन में फीकापन आ जाता है और यौवन का जोश ठंडा पड़ जाता है। बुढ़ापे को किसी दूसरे साँचे में नहीं ढाला जा सकता। आयु के गुजरने के साथ प्रकृति के उपकरणों, कला और सौन्दर्य को तर्क से समझने की प्रवीणता भले ही आ जाय, किन्तु वह सौन्दर्य आँखों में आभासित नहीं होता, न दिल में

गुदगुदी ही होती है। देखिए, कितना फ़र्क पड़ता है--कोई व्यक्ति संगीत और कला के देश, रफील, ल्योनार्डो और माईकल एंजलो की जन्म-भूमि इटली की यात्रा यौवन-काल में नहीं बल्कि प्रौढ़ अवस्था में करे तो। लेकिन कश्मीर के पहाड़ों पर बुढ़ापा भी रीझ न उठे तो क्या करे ?

इसी तरह मेरी प्रौढ़ अवस्था का एक-एक साल गुज़रने लगा। मुझे यह डर हुआ कि मुझे कदाचित् कश्मीर के सौन्दर्य का आनन्द लेने का अवसर ही न मिले। कश्मीर से बहुत से मित्र मुझे आमन्त्रित कर रहे थे। शेख अब्दुल्ला के कई निमन्त्रणों में मुझे इस बात की याद दिलाई गई कि मैं भी कश्मीर का ही एक लाल हूँ और अपनी जन्म-भूमि के प्रति मेरा भी कुछ कर्तव्य है। उनके निमन्त्रण पाकर तो मुझे कुछ हँसी आई, क्योंकि कश्मीर-भ्रमण की अभिलाषा तो पहले ही मेरे दिल मे घर कर गई थी। इसी बीच यूरोप में युद्ध छिड़ गया और उसका प्रभाव भारत पर भी पड़ने लगा। नई समस्याएँ उत्पन्न हुईं और मुझे आशंका होने लगी कि कहीं कश्मीर की सैर के प्रस्ताव पर पानी न फिर जाय। परन्तु उस समय तो मेरा निश्चय दृढ़ था। जब फ्रांस का भविष्य डगमग डोल रहा था, मैं सीमाप्रान्त के दौरे के बाद कश्मीर चला गया।

जाते समय तो मैं एबट्टाबाद के रास्ते (जो अब पाकिस्तान में है) झेलम घाटी के बीचोंबीच होते हुए गया। सड़क के दोनों ओर प्रकृति अपना आँचल फैलाए पड़ी थी। मुझे कहा गया कि जम्मू के रास्ते, पीरपंचाल पर्वत से होकर जाने वाली

सड़क अधिक मनोरम है। किन्तु उस रास्ते का अधिकतर भाग तो उच्छिन्न-सा पड़ा है। हाँ, ज्योंही यात्री उस लम्बी बानिहाल 'टनल' के बीच से होकर गुजरता है तो एक ऐसा दृश्य आँखों के सामने उपस्थित होता है जिसकी मनोहरता दिल पर जादू करती है। टनल को पार करना तो अँधेरे से प्रकाश की ओर आना है। उस पर्वत की चोटी से हमारे स्वप्नों की दुनिया—कश्मीर घाटी—की झाँकी मिलती है, जिसके चारों ओर ऊँचे शैल सतर्क प्रहरी-से खड़े हैं।

मैं इस मार्ग से तो नहीं गया, इसलिए मुझे प्राकृतिक दृश्यों में कोई खास परिवर्तन प्रतीत न हुआ। कश्मीरी मुझे 'भाई' और 'साथी' पुकारकर मेरा स्वागत करते तो मेरे हर्ष की सीमा न रहती। वह पुकारकर मुझे याद दिला रहे थे कि अगर मैं कश्मीर से काफ़ी देर बाहर रहा तो क्या? आखिर मैं कश्मीरी ही तो था और वापस अपने घर लौट रहा था। ऐसे दृश्य जिनकी मैं वर्षों से कल्पना कर रहा था और वही अब मेरे सामने वास्तविक रूप में उपस्थित थे। मैं तो खुशी से फूल उठा। मेरे दोनों ओर पहाड़ थे जिनका अंचल मदमाती झेलम नदी के पानी से भीगा हुआ था। उस तंग सड़क को छोड़कर मैं उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ कश्मीर-घाटी मेरे सामने फैली हुई थी। वहाँ ऊँचे और पतले सफ़ेदे के वृक्षों का स्वागत, शत-शत वर्ष आयु वाले चिनार के विशाल तरुओं का अभिवादन और सुन्दर कश्मीरी महिलाओं और उनके बलिष्ठ शिशुओं का निमन्त्रण था।

श्रीनगर में मेरा गरम-जोशी से स्वागत हुआ। मेरे सारे मित्र तो वहाँ मौजूद थे। एक 'पिरन्द' नौका में बिठाकर मेरा दरियाई जुलूस निकाला गया। मेरे पीछे असंख्य नौकाएँ चली आ रही थीं और झेलम नदी के दोनों घाटों पर स्थित मकान, उन्मीषित नर-नारियों से खचाखच भरे थे। स्नेह के इस अनन्त प्रवाह ने मुझे अपने साथ बहा लिया, और मैं इतना प्रभावित हुआ कि मौन हो गया। आखिर मैं तो कश्मीर में था!

दो सप्ताह मैं वहाँ रहा। इस थोड़े से समय में अमरनाथ और लिद्दर घाटी की सैर की और कोलाहाई ग्लेशियर को देखा। मैंने मार्तण्ड के प्राचीन मन्दिर के खण्डहरों को देखा और वृजविहार में चार सौ वर्ष पुराने चिनार की शीतल छाया में विश्राम किया। मुग़ल सम्राटों द्वारा बनाए हुए बाग़ों का भ्रमण कर कश्मीर के पुराने इतिहास की विवेचना की। चश्मा-शाही का निर्मल, ठण्डा पानी पिया और डल सरोवर में डुबकी ली। कश्मीर के प्रवीण कलाकारों की अमर कृतियों को देखा, काफ़ी जगहों पर भाषण दिये और कश्मीरियों से मिलने का अवसर मिला।

जब मैं कहीं भाषण देने लगता तो अपनी ओर से यही प्रयत्न करता कि मेरा ध्यान किसी ओर न जाय। लेकिन मेरा दिल तो कहीं और ही लगा था, सो बोलते समय भी मैं खोया-सा रहता। मनोरम कश्मीर ने तो मुझे मोह लिया, मुझ पर जादू कर दिया। मैं इस घाटी में इस तरह फिरता रहा जैसे मुझ पर हुस्न की शराब की मस्ती छा गई हो।

कश्मीर की घाटियों, झीलों और झरनों की मनोहरता उस मनभावन रमणी के सौन्दर्य की तरह है जो कल्पना से भी परे है। इस मनोज्ञता का एक और पहलू भी है। वह है उसके ऊँचे शैलों, बड़े शिला-खण्डों, हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों, ठण्डे चश्मों और ज़ोर-शोर से बहते झरनों की मनोरम दृश्य-माला। इस सौन्दर्य के सैकड़ों आनन हैं जो सदा बदलते रहते हैं—कभी मुस्कराते और कभी मलिन दिखाई पड़ते हैं।

डल सरोवर से जब एक अदृश्य यवनिका की तरह कुहासा ऊपर उठती है तो एक समां बंध जाता है। इस घाटी के बादल ऐसे लगते हैं, जैसे पर्वत-शिखरों का आलिंगन कर नीचे को आ रहे हों। मैंने इन क्षण-प्रतिक्षण बदलते दृश्यों को देखा और लगा, इनके अनन्त सौन्दर्य ने मेरी इन्द्रियों को बेसुध कर दिया। मैंने फिर ध्यान से देखा तो मानो स्वप्न देख रहा था। काश्मीर का सौन्दर्य उस नायिका के आनन की तरह है जो स्वप्नावस्था के धुँधलके में दिखाई देता है और जागने पर अदृश्य हो जाता है।

× × ×

जब मैं चीन गया तो चीनी लोगों की कला और घरेलू दस्त-कारी के नमूने देखकर हैरान हुआ था। भारतवर्ष अपनी शिल्प-कला के लिए प्राचीन काल से प्रसिद्ध है, परन्तु इस पहलू से मुझे चीनी अधिक प्रवीण नज़र आये। कश्मीर पहुँचकर मुझे यह विदित हुआ कि कश्मीरी कारीगर ही चीनियों का मुक़ाबला कर सकते हैं। कश्मीरी कलाकारों के निपुण हाथों से बनी हुई चीज़ें कितनी सुन्दर होती हैं! इतनी कलात्मक कि उन्हें देख

हृदय हर्ष से निनादित हो उठता है। कश्मीर के शाल-दुशाले सुप्रसिद्ध हैं। लेकिन ऐसा होते हुए भी इनकी ख्याति कम होती गई और इनका स्थान पश्चिमी देशों के कारख़ानों में बने सस्ते कपड़े ने ले लिया। यही दशा कश्मीर की अन्य दस्तकारियों की भी है। कश्मीर आने वाले तो कुछ चीज़ें ख़रीद लेते हैं, परन्तु भारत के धनी व्यक्तियों ने इन सुन्दर स्वदेशी चीज़ों की बजाय विदेशी चीज़ों को ही पसन्द किया।

× × ×

श्रीनगर में कुछ दिन ठहरने के पश्चात् हमने वेरीनाग, अनन्तनाग और मार्तण्ड की सैर की। मौसम ख़राब था फिर भी प्रत्येक स्थान पर काफ़ी लोग इकट्ठे हो गये थे, और मैंने बरसते हुए मेंह में उनसे बातें कीं। दूसरे दिन चन्दनवारी की ओर चल पड़े। अमरनाथ की गुफ़ा वहाँ से नज़दीक ही है। सभी घोड़ों पर सवार थे, लेकिन वर्षा के कारण यात्रा का आनन्द न ले सके। मेरे सिवाय सभी थककर चूर हो गये थे। अपने अन्य साथियों को छोड़कर मैं शेषनाग सरोवर की ओर चल पड़ा, जहाँ दूसरा पड़ाव पड़ता था। दिन डूबने को था, इसलिए मुझे लौट ही आना पड़ा।

उसी दिन हम चन्दनवारी से पहलगाँव वापस लौटे और दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही लिद्दरवट की ओर प्रस्थान किया। रास्ता लिद्दर नदी के साथ-साथ जाता है। आकाश से बादल हट गये थे और हमें दिनमणि के दर्शनों की प्रतीक्षा थी। हमने दूसरे दिन कोलाहाई ग्लेशियर तक पहुँचने का फैसला किया था।

रात लिद्दरवट में काटी। जब रवि की सुवर्णमयी रश्मियाँ प्राची का चुम्बन कर रही थीं तो आकाश पर बादलों का कहीं नाम न था। शिलाओं, पर्वतों के ऊपर और झरनों के बीच से होता हुआ मार्ग दुर्गम था। ग्लेशियर के नज़दीकी पड़ाव पर हमने कश्मीरी स्वादिष्ट भोजन का आनन्द लिया। तब चढ़ाई आरम्भ हुई, और गड्ढों और खन्दकों से बचते हुए हम चलते गये। समय कम था, इसलिए बहुत ऊपर न जा सके और तुरन्त ही लिद्दरवट लौटना पड़ा। ग्लेशियर की एक झाँकी ने मानो, मेरी एक आकांक्षा पूरी की। इस यात्रा में मेरे प्रत्येक साथी को घोड़े से नीचे गिरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। केवल मैं ही था जिसे गिरने का बिल्कुल शोक नहीं हुआ!

लिद्दरवट से मेरा विचार सोनामर्ग जाने का था। लेकिन वहाँ पहुँचने से पहले एक बहुत ऊँचे पहाड़ से होकर जाना पड़ता है; उसे पार करना उस मौसम में असम्भव था। इस शिखर का नाम भी तो 'यमहेर'—यमराज की सीढ़ी—रखा है। यह हर समय बर्फ़ से ढका रहता है और पैर फिसलने का भय रहता है। फिसल जाय तो लुढककर यमलोक पहुँचने में सुविधा रहती है! इसीलिए हमने सोनामर्ग जाने का खयाल ही छोड़ दिया।

दूसरे दिन हम पहलगाँव लौट आये। कई दिनों से हमें बाहर के समाचारों का कोई पता न था। उस समय उत्तरी फ्रांस के युद्धस्थल पर फ्रांस के भविष्य का निर्णय हो रहा था। कुछ पुराने समाचार हमें मिले और तब ज्ञात हुआ कि यूरोप में आया हुआ तूफ़ान चारों तरफ़ फैल चुका था।

पहलगाँव से वापस श्रीनगर ! साथियों से विदा ली, और जम्मू की ओर चल पड़े। घाटी को छोड़ हम पहाड़ पर चढ़ने लगे। और वह हम से दूर होती गई। जाने से पहले हमने टनल के समीप रुककर संगीत, कला और सौन्दर्य के देश कश्मीर की अन्तिम झाँकी ली। कहीं-कहीं कुहासा छा गया था। व्योम में फैले मेघ के खण्डों से ऊपर शैलों की ऊँची चोटियाँ दृष्टिगोचर हो रही थीं; दूर कहीं पहाड़ी झरनों का कलनादमय संगीत था। मौन होकर हमने आँखों में ही विदा ली। वह मोटर, जैसे मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध खींचकर ले जा रही थी।

रात को कुद में विश्राम किया। दूसरे दिन जम्मू पहुँचे। वहाँ के निवासियों ने अपने स्नेह का पूरा परिचय दिया। उसी शाम हम लाहौर की ओर चल पड़े।

कश्मीर में बारह दिन की सैर का अवसर तेईस वर्षों के पश्चात् ! यहाँ बिताया एक क्षण भी अन्य कहीं बिताए कई वर्षों से अधिक महत्त्व रखता है। कश्मीर में बारह दिन पर्यटन करने का अवसर मिल जाय तो सौभाग्य ही समझना चाहिए।

कश्मीर मुझे फिर बुला रहा है। उसका मोह अपनी ओर खींच लेता है। कानों में अप्सराओं का सगीत-सा भर, दिल को बेचैन करता है। जिन्हें कश्मीर ने मोह लिया हो वह अपने को उसके प्यारे बन्धनों से क्योंकर छुड़ा सकते हैं !

प्राक्कथन

"कश्मीर की सुन्दरता ने मुझे मोहित कर लिया। कई बार तो ऐसा लगा कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ; प्रकृति के उपकरणों की अकथनीय मनोहरता ने तो मुझे वश में कर लिया था।" श्री जवाहरलाल नेहरू ने इन शब्दों से अपने एक कश्मीर सम्बन्धी लेख का आरम्भ किया। कुछ ऐसे ही भावों का उल्लेख अन्य कई यात्री, जिनमें ह्वेनसांग, अल्बेरूनी इत्यादि के नाम सुविख्यात हैं, अपने कश्मीर सम्बन्धी लेखों में कर चुके हैं। उन्होंने जहाँ इस रमणीक प्रदेश के सौन्दर्य की चर्चा की है वहाँ कश्मीरियों के धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विचारों पर भी काफ़ी प्रकाश डाला है। वह सब इस बात से सहमत हैं कि ऐसे मनोरम देश में रहते हुए भी कश्मीरियों के दुःख और चिन्ता का मूल कारण उनका पिछला दर्दभरा इतिहास है, जिसकी स्मृति आज भी उनके मन को आच्छादित किये हुए है।

कश्मीर का पहला इतिहास लिखने का श्रेय सुविख्यात कवि कल्हण को प्राप्त है जिसने बारहवीं शताब्दी में अपने ग्रन्थ 'राजतरिङ्गनी' में हिन्दू शासकों की वार्ताओं का क्रम-पूर्वक वर्णन किया है। ऐसा जान पड़ता है कि आर्यों ने कश्मीर को भारत में

प्रवेश करते समय मार्ग में नहीं जीत लिया, प्रत्युत् उत्तर-पश्चिम से पंजाब में घुस आने के पश्चात ही वह कश्मीर में प्रविष्ट हुए। कश्मीरियों की भाषा, रूप-रंग और मुखाकृति आदि से उनका आर्य जाति से सम्बन्ध साफ जाहिर हो जाता है। महाराज अशोक का राज्य-काल कश्मीरवासियों के लिए सुख और शान्ति का समय रहा। तत्पश्चात् कुशान राजाओं ने शासन किया और बहुत समय तक बौद्धमत तथा हिन्दूमत दोनों एक साथ फले-फूले। सबसे पिछली हिन्दू शासक रानी दिद्दा थी। उसने ९८० ई० से १००३ ई० तक राज्य किया। इसने अकण्टक राज्य करने के उद्देश्य से अपने पोते को मार डाला, उसका पुत्र तो पहले ही मर चुका था।[1] उस समय हिन्दू राज्य पर विनाश के बादल मँडरा रहे थे। षड्यन्त्रों, गृह-युद्धों तथा अन्य कुप्रथाओं का घर बन जाने के कारण देश मे अशान्ति फैलने लगी।

इस स्थिति से लाभ उठाकर मुसलमानों ने कश्मीर पर आक्रमण किया। १३१४ मे नृशंस सुल्तान सिकन्दर 'बुतशिकन' कश्मीर का शासक था। उसने देव-मूर्तियों तथा प्राचीन मन्दिरों को तोड़-फोड़कर लोगों को बलपूर्वक इस्लाम ग्रहण करने पर विवश किया। किन्तु इसके विपरीत सुल्तान जैनुलाबदीन 'बड़-शाह' (१४२३–७४) अत्यन्त बुद्धिमान्, सुशील तथा दयालू शासक था। उसने हिन्दुओं के आँसू पोंछे, कई प्रकार की सुविधाएँ दी, उनके मन्दिरों की मरम्मत करवाई और द्विजों की विद्या को फिर से जीवित किया। इस समय भी कश्मीरी

१. कहानी 'चित्रलेखा'।

'बड़शाह' की चर्चा अपने रसीले लोकगीतों में करते हैं।

१५८५ ई० में कश्मीर पर मुग़लों का आधिपत्य था। अकबर तथा जहांगीर को कश्मीर से बड़ी प्रीति थी। अपने राज्यकाल में अकबर ने कश्मीरियों को दुर्भिक्ष से बचाया, उन्हें मज़दूरी दिलवाई। जब तक उसके बनवाए हुए हारी पर्वत दुर्ग की एक-एक ईंट, एक-एक पत्थर धरती में न समा जाय तब तक कश्मीरियों के दिलों में उसकी याद रहेगी।[1] जहांगीर ने तो अपनी अन्तिम साँसें कश्मीरी झरनों का कलनादमय संगीत सुनते ही ली थीं।[2] जहांगीर का प्रतिबिम्ब डल सरोवर, जिसके तट पर निशात, शालामार आदि उद्यान निर्मित हैं, के निर्मल पानी में अब भी दीखता है।[3] औरंगजेब ने लोगों पर अत्याचार करवाये। उसकी बेटी लालारुख़ सैर-सपाटे के लिए यहाँ आया करती थी।[4] १७५६ ई० में अहमदशाह दुर्रानी ने कश्मीर पर आक्रमण कर यहीं की मुगल सेना को परास्त किया। क्रूर दुर्रानियों के पठानी राज्य में अभागे हिन्दुओं के साथ अन्याय होते रहे।

पंजाब के सिख सम्राट् रणजीतसिंह ने तब १८१९ में कश्मीर को जब्बार खां से छीन लिया।[5] सिक्खों ने भी यहाँ बड़ी कठोरता से शासन किया; वह कश्मीरियों का मूल्य

१. कहानी 'रोटी का सवाल'। २. कहानी 'जहांगीर की अंतिम घड़ी'।
३. कहानी 'निशात बाग़ का नायक'। ४. कहानी 'लालारुख़'।
५. कहानी 'कश्मीर-विजय'।

भेड़-बकरी से अधिक न समझते थे। इस काल के पश्चात् का इतिहास एक प्रकार से केवल डोगरा (राजपूत) सेनापति गुलाब-सिंह की कहानी है। उसने अपने को एक सुयोग्य नीतिज्ञ सिद्ध किया। अंग्रेजों के साथ दो सन्धि-पत्र लिखे गये, जिनमें से एक के द्वारा गुलाबसिंह को ७५ लाख रुपयों के बदले में १६ मार्च, १८४६ को सिन्धु नदी के पूर्व और रावी नदी के पश्चिम का पहाड़ी इलाक़ा दिया गया और कश्मीर पर डोगरा शासक गुलाब-सिंह का आधिपत्य हो गया। महाराज हरिसिंह, जो इस समय रियासत छोड़कर चले गये हैं, डोगरावंशीय हैं। १९ अक्तूबर, १९४७ में बर्बर आक्रमणकारियों ने वसुन्धरा के नन्दन को रौरव का रूप दिया, जिससे कश्मीरियों के दिलों में पठानी राज्य-काल की याद ताज़ा हो गई।[1]

मेरा विचार है कि कश्मीर यदि भूगोल के अन्य देशों से अपेक्षाकृत अलग-थलग न होता तो यहाँ बहुत बड़ी राजनीतिक और धार्मिक क्रान्तियाँ आई होतीं और यहाँ के निवासियों के चरित्र पर निःसन्देह उनका बहुत कुछ प्रभाव पड़ गया होता। फिर भी कुछ हद तक कश्मीरियों की भावनाएँ बौद्धों, मुग़लों, सिक्खों और डोगरों के चरित्र से अवश्य प्रभावित हुई हैं।

इन कहानियों में कश्मीर के इतिहास की कुछ झलकियाँ दिखाई गई हैं। कहानियाँ इतिहास के पृष्ठों से ली गई हैं, कहीं-कहीं इनका मौलिक स्वरूप भी पाठक के सामने

१. कहानियाँ 'आर्त', 'घास का माया-जाल' और 'शंकरलाल की दीवाली'।

आ जाता है। कल्पना का भी उपयोग किया गया है, परन्तु वह केवल सामाजिक वातावरण की सृष्टि के लिए ही। स्व० श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने कहानी 'लालारुख़' पढ़कर लिखा था—"ऐतिहासिक कहानी में इतिहास और संस्कृति के साथ कवित्व का संयोग बहुत ही अच्छा लगा।"

इनमें से कुछ कहानियों का कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों तथा पाठकों द्वारा स्वागत होते देख लेखक का उत्साहवर्द्धन हुआ था। हिन्दी साहित्य में यह कश्मीर सम्बन्धी कहानियों का पहला संग्रह है। पाठक इसे पसन्द करें तो दूसरा संग्रह भी जल्द ही उनकी सेवा में प्रस्तुत होगा।

मोहनकृष्ण दर

हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड
रामनगर, नई दिल्ली

क्रम

	पृष्ठ
१. लालारुख़	१
२. कश्मीर विजय	१९
३. चित्रलेखा	३८
४. रोटी का सवाल	५८
५. घास का माया-जाल	७०
६. जहांगीर की अन्तिम घड़ी	७८
७. आर्त	८८
८. शंकरलाल की दीवाली	९६
९. निशात बाग का नायक	१०२

केसर के फूल

१

लालारुख़

दिल्ली के साम्राज्य-सिंहासन पर शहंशाह औरंगज़ेब विचार-मग्न बैठे हैं। तीस करोड़ का स्वर्ण-रचित तथा मणि-माणिक्यजड़ित तख़्तेताऊस राज-सभा की शोभा बढ़ा रहा है। शहंशाह के पास ही एक ओर प्रधान सेनापति और दूसरी ओर कश्मीर के आमिल अबुलनसरखां बैठे हैं। सभी चुप हैं, मानो सभा में किसी प्राणी का वास नहीं। पक्षियों का कलरव तथा प्रातःकालीन शीतल पवन से विकम्पित भाँति-भाँति के मुक्ताओं की झालरों के झूलने की धीमी रिमझिम-रिमझिम तीनों के कानों में अस्फुट संगीत भर रहे हैं।

कुछ देर सोचकर औरंगज़ेब ने आख़िर कहा, "अबुलनसरखां, आपको मालूम है कि शहज़ादी लालारुख़ की इच्छा कश्मीर जाने को करती है।"

"हाँ, जहांपनाह!"—अबुलनसरखां ने सिर झुकाकर कहा।

"आप शहज़ादी के साथ कश्मीर लौट जायँ; सेनापति जी भी आपके साथ रहेंगे। हमने इसीलिए आपको कश्मीर से बुलवाया है। शहज़ादी गरमियाँ वहीं बिताएंगी और पतझर

में लौट आयँगी । कश्मीर से लौट आने पर शहज़ादी का ब्याह बुख़ारा के शहज़ादे फदलुद्दीन के साथ रचाया जायगा ।"

"वह दिन मुबारिक हो आलमपनाह !"

"हाँ, तो आप कल प्रस्थान की तैयारी करें ।"

"बेहतर आलमपनाह !"—सेनापति और अबुलनसरखां ने एककंठ होकर कहा ।

"और हाँ, शहज़ादी के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना । राज-वैद्य भी आपके साथ रहेगा ।"

"आलमपनाह निश्चिन्त रहें !"—अबुलनसरखां ने आश्वासन देते हुए कहा ।

इसी बीच वेगपूर्वक पवन के एक झकोरे ने कहीं से गुलाब की एक पत्ती को उठाकर औरंगजेब के मुँह पर दे मारा । गुलाब की वह कोमल पत्ती कुछ क्षण उनकी मूँछों से अटकी, फिर नृत्य करती, धीरे-धीरे, उनके दाहिने पैर पर आ गिरी ।

"उफ़, कितनी नफ़रत है मुझे इन गुलाब के फूलों से !" अपने पैर से गुलाब की पत्ती को हटाते हुए औरंगजेब ने कहा, "इसके गुलाबी रंग पर नज़र पड़ जाने से मैं अरग़वानी शराब के स्वप्न देखने लगता हूँ, इसकी बू आ जाने पर मेरा मस्तिष्क, विकृत-सा होकर किसी नर्तकी के काले, सुगन्धित, सघन और लम्बे केशों की कल्पना करने लगता है—काले केशों की ! तोबा !!" गुलाब की उस पत्ती को अपने दाहिने पैर से रौंदते हुए, घृणासूचक स्वर से औरंगजेब ने कहा ।

"आलीजाह·····!"

"सम्भवत: कश्मीर में लालारुख को लाला के फूल अच्छे भायं ।"

उन्हें कश्मीर से आये हुए पिछले महीने के एक समाचार का स्मरण हुआ--डाकुओं की एक टोली ने रजौरी के स्थान पर सौदागरों के एक काफ़िले को लूट लिया था। वह चिन्तित हुए । फिर विक्षिप्त भाव से बोले, "सेनापति जी, सवारी की रक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाना चाहिए ।"

"गुलाम से भूल न होगी, आलमपनाह !"--नतमस्तक होकर सेनापति ने कहा।

"हाँ, पिछले दो मास से कश्मीर से लूट-मार के बहुत से समाचार आये हैं। जब शाहजहां जीते थे, तब ऐसे समाचार सुनने में नहीं आते थे। आजकल ऐसे समाचार क्यों आ रहे हैं?" औरंगजेब ने अबुलनसरखां से पूछा।

अबुलनसरखां किसी गहरे विचार में मग्न था। कुछ क्षण के लिए वह भूल बैठा कि वह औरंगजेब के सामने बैठा हुआ है। उसी औरंगजेब के सामने जिसने अपने हाथों से अपने भाइयों को मौत की नींद सुला दिया था, जिसने अपने पिता शहंशाह शाहजहां को उनकी बूढ़ी आयु में आगरे के एक दुर्ग में नज़रबन्द करवाकर उनके प्राण लिये थे, और जो अपने सामने किसी दूसरे की प्रशंसा सुनने को तैयार नहीं था

औरंगजेब के प्रश्न का उत्तर देते हुए अविचलित भाव से अबुलनसरखां ने कहा, "शहनशाह शाहजहां करुणावतार, प्रेम....."

इतना ही कह पाया था कि उसकी दृष्टि औरंगजेब के लाल मुँह की ओर पड़ी। उसके शरीर में विद्युत की रेखा-सी दौड़ गई, उसका भाल स्वेदमय हो गया और शरीर थर-थर काँपने लगा। बात को काटकर वह फिर बोला, "कश्मीर भारतवर्ष के लिए परम सैनिक महत्त्व का स्थान है। पहाड़ी प्रदेशों में मोर्चे बनाकर बैठे पाँच-सात लुटेरे आसानी से सहस्रों शत्रुओं की बाढ़ को रोक सकते हैं। आलमपनाह, सर्दियों में हिम के कारण सब रास्ते बन्द पड़े रहते हैं, अतः सेना एक से दूसरे स्थान तक सुविधा से नहीं भेजी जा सकती है। अब बसन्त ऋतु आ गई है, रास्ते सभी खुल गये हैं, और लुटेरों के दमन की पूरी तैयारियाँ हो चुकी हैं। आप निश्चिन्त रहें।"

"ठीक है।"

आलमगीर को पहली बार इस बात का अनुभव हुआ कि उसमें वह गुण—वह आदर्श वीरता, करुणा और स्नेह—वर्तमान नहीं जो शाहजहां में विद्यमान थे, जिनके कारण वह भारतवर्ष के करोड़ों लोगों के हृदयों पर शासन करते थे। अपने ही एक मुग़ल भाई के मुँह से निकले हुए अपमान-सूचक शब्दों को सुनकर आलमगीर की आँखों में खून उतर आया। उन्होंने सुना नहीं कि अब्दुलनसरखां ने इसके पश्चात् क्या कुछ कहा, और यँ ही सिर हिलाते रहे। कश्मीर के आमिल के मुँह से शाहजहां की प्रशंसा में निकले हुए कुछ शब्द औरंगजेब के लिए तीखे बाणों से कुछ कम न थे, जिनके

कारण उनका दया-शून्य हृदय, अहंकार-पूर्ण मस्तिष्क उसकी प्रतिभा के तट से रह-रहकर टकरा उठता था। वे मुँह से कुछ नहीं बोले, चुप्पी का ही आश्रय लिया उन्होंने।

फिर तीनों चुप हुए। ठंडी सुरभि-युक्त वायु चलने लगी। महल के एक कोने से राजकुमारी लालारुख़ के कोकिल-कंठ से निकली हुई रसीली तान सुनाई दी।

अब्दुलनसरखां ने माथे से प्रस्वेद पोंछ डाला।

× × ×

वसन्त का सुरम्य प्रभात!

शहज़ादी लालारुख़ की सवारी पीरपंजाल की शैल-माला को पार करती हुई और घाटियों में से होती हुई श्रीनगर को जा रही है। सवारी के साथ एक सहस्र तुरगारूढ़, कील-कांटे से लैस सिपाही चले आ रहे हैं। मार्ग दुर्गम और पगडण्डी तंग होने के कारण सवारी दो-ढाई कोस तक फैल चुकी है और हाथी-घोड़ों की गति शिथिल पड़ गई है। शहज़ादी अपनी सहेलियों समेत एक पूर्ण रूप से सुसज्जित हाथी पर सवार है। शहज़ादी के अपूर्व सौंदर्य को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनमें उषा की प्रफुल्लता है, कुसुम की कोमलता, ऋतुराज की छवि, सुवर्ण की चमक और कोकिल की ध्वनि हैं। सभी गुण उनकी मानव-प्रतिभा में एकत्र सम्मिश्रित हो गये है। उनके स्फुटित अरुण अधरों पर मीठी मुस्कराहट खेल रही है, उनके गुलाबी कपोलों पर अंशुमाली की सुवर्णमयी रश्मियाँ नृत्य करती अपने को कृतकृत्य करती जा रही हैं, उनके कमल नयन, जिन पर सुकुमार पलकें

मूक भाषा में बोलती हुई, मानों प्रकृति के उपकरणों से अपने रहस्य कह रही हों, पर्वतीय सुषमा को निरखकर उनके हृदय को आनन्दित कर रहे हैं, और उनके प्रशस्त-प्रदीप्त श्यामल भाल, काले घुँघराले केश तथा स्वच्छ, पर्वतीय समीर के झोंकों से फड़फड़ाती गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी से उन्मत्त कर देने वाली सुगन्ध की लपटें आ रही हैं।

राजकुमारी के हाथ में रजत गुलाब का एक फूल है, जिसका वह बार-बार वास ले रही हैं। उन्होंने उस पाटल की ओर ध्यान लगाकर देखा, उसकी सफेद, कोमल पत्तियों को निरखा और सूँघा उसकी पीली-पीली पँखुड़ियों को, बार-बार। उस गुलाब में उन्हें कुछ विचित्रता-सी दीख पड़ी। उन्होंने अबुल-नसरखां से पूछा, "खां, दिल्ली में ऐसे गुलाब देखने में नहीं आते, क्या कारण है ?"

"शहज़ादी साहिबा, यह गुलाब केवल कश्मीर के वनों में पाये जाते हैं, भारतवर्ष में और कहीं नहीं मिलते हैं।"—अबुल-नसरखां ने अपनी दाहिनी ओर वाले घुड़सवार से कहा।

"तो, हम श्रीनगर कब पहुँच रहे हैं ?"

"कल शाम, शहज़ादी साहिबा ! आज शाम को हम बहरामगली पहुँच रहे हैं। वहाँ से केवल एक दिन का रास्ता है।"

"तो श्रीनगर अभी दूर है।" सतृष्ण आँखों से पर्वत के एक हिमाच्छादित शिखर की ओर देखते हुए लालारुख़ ने कहा। उन्होंने पुनः प्रकृति के सौंदर्य में अपने को भुला डाला।

हौदे में बैठी हुई सहेलियों ने राजकुमारी से नोक-झोंक आरम्भ की।

"शहज़ादी साहिबा क्या भूल बैठीं अपने को प्राकृतिक सौंदर्य में ?"—हुसनआरा ने कहा। नसीम ने व्यंग कसा—"रीझ गई हैं प्रकृति की मनोज्ञता पर ! किसी शहज़ादे....."

"अल्लाह ने दिल तो इसीलिए दिया है नसीम !" नसीम की ओर देखते हुए लालारुख़ ने कहा। "देखो, प्राची में प्रकाश की रश्मियाँ अपना सुवर्णांचल फैलाए हुए प्रातःकालीन पवन से अठखेलियाँ कर रही हैं। रंग-बिरंगी पर्वतीय कुसुमों की झालरें और पल्लवान्वित लताएँ सुख-शीतल पवन से विकम्पित होकर चारों ओर झूल रही हैं, मानो ऋतुराज के आगमन पर हर्षित होकर और उसके स्वागत में मादक नृत्य कर रही हों। वसन्त-प्रभात के दूर्वादल पर ओस की बूँदें दिन-मणि की किरणों से मुस्करा रही हैं। पास में बहते सुस्वादतोय झरने का कोमल कलनाद, मधुपावलियों की शोभा, चीड़ के ऊँचे वृक्षों की अवनत शाखाओं में से बहती हुई मतवारी पवन की मधुर साँय-साँय और पक्षियों का कलरव आदि कानों में अस्फुट संगीत भर रहे हैं।"

इतने में एक पहाड़ी अहीर हाथों में मधु से भरा हुआ मिट्टी का एक छोटा पात्र लिये सामने दृष्टिगोचर हुआ। गोजर का वेश अत्यन्त मलीन था। उसके सिर पर एक फटी हुई पगड़ी थी, शरीर पर एक कश्मीरी कम्बल और पैरों में घास का एक 'पुलहरू' जूता था। मन्द गति से चलता हुआ

और बार-बार अभिवादन करता हुआ वह शहज़ादी के हाथी की ओर बढ़ा। उसके शरीर में थरथराहट हो रही थी और माथे से प्रस्वेद फूट रहा था। शहज़ादी ने महावत को हाथी रोक लेने को कहा। हाथी रुका, गोजर आगे बढ़ा और मिट्टी के उस छोटे से पात्र को शहज़ादी के हाथों में दे दिया।

"खां, इस गूजर को एक मुहर दी जाय!"--पाटल की एक पत्ती को मधु के साथ चखते हुए राजकुमारी ने अबुलनसरखां से कहा। नसीम और हुसनआरा ने भी मधु का स्वाद लिया। सवारी आगे बढ़ी तो शहज़ादी ने नसीम से कहा, "चखने में आया है कभी ऐसा स्वादिष्ट पदार्थ? कहो!"

नसीम ने आँखें नीची कीं। कुछ देर वह चुप रही; उसके पास केवल एक उत्तर था---'नहीं!'

"वसुन्धरा के नन्दनवासी ऐसा ही भोजन करते हैं। इन ऊँचे शैलों पर, जहाँ कोई पैदावार नहीं, प्रकृति ने इनके लिए इस षट्रस भोजन का प्रबन्ध किया है। काश हमें भी ऐसे ही स्वादिष्ट पदार्थ रोज़ खाने को मिलते!"---शहज़ादी की आँखें उस युवक गोजर की पीठ पर टिकी हुई थीं।

पास के गाँव के बालक, अनुराग-भरे मधुर ग्राम्य-गीत गाते हुए भेड़ों के झुण्ड के पीछे-पीछे वन की ओर चले जा रहे थे। भेड़ों के समूह के चारों ओर पहारू कुत्ते चक्कर काट रहे थे। उनके पतले अंगों में केसरी का बल था; उनकी भौं-भौं चारों दिशाओं को गुञ्जरित करती थी। वह उन गाते

बालकों की टांगों से बार-बार लिपटकर हरी-हरी घास पर दौड़ते, लेट जाते ।

"देखो उन बालकों की ओर!"—लालारुख़ ने संकेत किया। "वंशी बजाते और धीरे-धीरे पग उठाते वह भेड़ों के गले से लटकी हुई घंटियों के मधुर स्वर में अपने ग्राम्य-गीतों का आलाप मिला रहे हैं। उनके चारों ओर भाँति-भाँति के वन्य-कुसुम और सदल लताएँ झूम रही हैं, और आलाप होकर वह उन जंगली वनस्पतियों की सुगन्ध में अपने को भूल-सा बैठे हैं। संसार की कोई चिन्ता इनकी प्रसन्नता में बाधा नहीं डाल सकती!"

"शहज़ादी! इनके उजड़े हुए वेश और इनकी क्षीण देह तक भी आपकी नज़र जाती है क्या?"—हुसनआरा ने बीच में टोकते हुए कहा।

"हाँ!"—उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लिया—"जाती क्यों नहीं? सदियों से कश्मीरी परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े पड़े हैं। आज तक किसी भी नरेश का ध्यान इनकी दरिद्रता की ओर आकर्षित नहीं हुआ और न अब ही कोई इनकी बिगड़ी हुई दशा को सुधारने का प्रयत्न करता है....."

"बादशाह सलातमत यदि सुन लें शहज़ादी साहिबा, तो....."

"तो क्या?"—लालारुख़ ने हुसनआरा की बात को काटकर पूछा। तुरन्त ही अबुलनसरखां ने अपना मुँह नीचे गिरा लिया। हुसनआरा मौन थी।

"शहंशाहाने––अकबर, जहांगीर और शाहजहां का ध्यान इस ओर गया था, और तब इनकी दशा कुछ सुधर गई थी। किन्तु आज फिर वही कश्मीरी, जिन्हें भू-स्वर्ग के देवता कह-कहकर सम्बोधित किया जाता है, भूखे और नंगे दिखाई देते हैं। हमें आश्चर्य होता है कि इनके चिथड़े कश्मीर के शिशिर की अस्थि-बेधक शीत से इनके शरीर को कैसे बचाते हैं ? अल्लाह !"

शहज़ादी कुछ देर चुप रहीं। विपिन से आई हुई वंशी की मीठी तान ने उनको रोमांचित कर दिया। फिर कुछ देर वह उन गोप-बालकों के दुःख-दर्द को भूल बैठीं और उस मीठी तान से मिला लिया उन्होंने अपना आलाप। और तब ही सतर्क प्रहरी से नन्हे-नन्हे गोप-बालकों की एक टोली, तृणाच्छादित झोंपड़ियों के एक समूह में से निकलकर दौड़ती-दौड़ती पगडण्डी की एक ओर आकर रुकी। नन्हे बालकों के कन्धों पर छोटी-छोटी कुल्हाड़ियाँ थीं, जिनका प्रयोग वह लकड़ी काटने में करते थे। अपने चिथड़ों में बने छिद्रों को छिपाने का बार-बार प्रयत्न करते हुए वे सभी एकटक होकर लालारुख़ की सवारी की ओर देखने लगे––निजी दीनता और सहिष्णुता के साथ। कभी-कभी उनकी दृष्टि अपने मलिन वेश तक जाती, अपने नंगे पैरों तक जाती और जाती हरी-हरी घास और धौरे कुसुमों तक !

लालारुख़ ने उनके आनन की ओर देखा, उनकी क्षीण देह की ओर देखा और साथ ही साथ देखा तरल-तुहिन

विभूषित सींक को। नसीम के हाथ को धीरे से हिलाकर वह बोलीं, "देखो ! वह नन्हे बालक अपने दीन वेश की ओर बार-बार ताककर भी भिक्षा के लिए हाथ नहीं फैलाते। धन्य हैं यह कश्मीरी !" उनका चन्द्रमुख प्रफुल्लित हो उठा। उनकी गुलाबी साड़ी के छोर और उनकी काली अलकें, स्वच्छ सुगन्धित पवन में फहराने लगीं।

"इनकी धमनियों में प्रकृति ने स्वाभिमान तथा स्वतन्त्रता का रक्त भर दिया है। यही ख़ून कभी खौल के रहेगा, आज नहीं तो कल अवश्य ही ! कोई सांसारिक शक्ति तब इन्हें ग़ुलाम बनाकर नहीं रख सकती। वह दिन दूर नहीं हुसनआरा, जब यह कश्मीरी पराधीनता की बेड़ियों को काटकर अपने आपको मुक्त करेंगे।"—शहज़ादी ने मुट्ठी भर अशरफियाँ उन नन्हे बालकों पर फेंक दीं।

एक छोटी-सी चिड़िया ने आकर सेवती के एक फूल में चोंच डाली, मकरन्द पान किया, कुछ लाल-लाल केशर खाई, और हृदय-विमोहन कलनाद करती हुई उड़ गई।

लालारुख़ ने पीछे की ओर देखा—नन्हे बालक आपस में अशरफियाँ बाँट रहे थे।

× × ×

वसन्त की राका चारों ओर अनूठा दृश्य दिखा रही है। व्योम में बहते मेघ के कुछ शिशु-खण्डों से आँख-मिचौनी खेलता हुआ अनुपम निशाकर अपना उज्ज्वल प्रकाश डल सरोवर के निर्मल जल पर डालता हुआ न मालूम किस लक्ष्य की ओर दौड़ा चला जा रहा है। गुलाब की कली का परिमल

लिये, मन्द-मन्द मारुत भी न मालूम कहाँ दौड़ रहा है। श्यामल हरियाली में जुगनू चमक-चमक कर चित्त को चंचल कर रहे हैं। संसार के समस्त प्राणी मीठी निद्रा का स्वाद ले रहे हैं। चिनार के एक वृक्ष के तले एक सुन्दर, सजीला युवक रबाब पर एक सुरीला गीत गा रहा है, जिससे यामिनी के अनिंद्य वातावरण में एक सुकुमार सृष्टि का निर्माण हो चला है। युवा के कमनीय कण्ठ से निकली हुई प्रत्येक तान सब वृक्षों को गुंजरित कर रही है।

शहज़ादी लालारुख़ श्रीनगर में ज़बर वन की ओट में स्थित परी महल के शयनागार की खिड़की से बाहर झाँककर एक चित्त होकर उस गीत को सुन रही है। चन्द्रमुखी का ध्यान पूर्णोज्ज्वल चन्द्र-ज्योत्सना प्रफुल्लित कुमोदिनी की ओर आकर्षित हो गया है। जल फुहियों को अपने सुकुमार पंखों पर ले जाने वाली सुरभित हवा उनकी नस-नस में मादकता का संचार कर रही है, और उनके श्यामल केशों को लहरा रही है--जैसे मृणाल-तन्तु !

गायक ने दूसरी तान छेड़ी। वह समाप्त हुई, तीसरी छेड़ी--वह गाता गया, लालारुख़ सुनती गई।

और रात बीतती गई।

युवक के बलिष्ठ हाथों और गाते होठों की ओर देखते-देखते उनकी आँखें शिथिल नहीं हुईं; उसके सुरीले गीतों को सुनते-सुनते उनका मन तृप्त नहीं हुआ और न प्राण ही संतुष्ट हुए।

लालारुख़ ने श्यामल आकाश की ओर देखा—टिमटिमाते हुए तारे एक-एक करके अपना अस्तित्व मिटाने चले जा रहे थे। डल सरोवर से आता शीतल तथा आर्द्र समीर शहज़ादी के मुँह को थपकी दे रहा था।

युवक गायक ने रबाब को बग़ल में दबाया, और धीरे-धीरे गुनगुनाता हुआ वह पेड़ों के झुरमुट में अदृश्य हो गया। शहज़ादी ने सतृष्ण लोचनों से चिनार के तने की ओर देखा, रजत टहनियों की ओर देखा और देखा सिरसिराते हुए पत्तों की ओर।

और तब ही उसी पेड़ की पल्लवित शाखाओं पर से पंख फड़फड़ाता हुआ कौओं का एक समुदाय द्रुत-वेग से डल सरोवर की ओर प्रस्थान कर गया।

शहज़ादी ने सुना—परी महल के उद्यान में तमचुर बांग दे रहा था !

× × ×

"शहज़ादा हूँ, फ़ामरोज़ नाम है।"

"कहाँ के राजकुमार हैं आप ?"

"कश्मीर के पश्चिम में स्थित एक देश का।"

लालारुख़ उस गायक राजकुमार से प्रश्न पूछ रही थी जिसने उन्हें रात भर अपने सुरीले गीतों से मोहित कर दिया था।

फ़ामरोज़ सुन्दर और सौंदर्य-प्रेम था। राजपाट के कामों में उसका जी न लगता था। उसका जी अगर कहीं लगता

था तो केवल कला-सम्बन्धी विषयों में। संगीत से उसे विशेष रुचि थी; प्रकृति सौन्दर्य के निरखने में ही उसे आनन्द आता था। पिछले साल राजकुमार की माता का देहान्त हो गया जिससे वह अत्यन्त शोकाकुल हुआ। अपने कमरे के द्वार बन्द कर वह चुपके-चुपके उसकी स्मृति में आँसू बहाया करता, और तब ही उसकी पीड़ित आत्मा को कुछ शांति प्राप्त होती। मीठे गीत गा-गा कर वह कुछ समय के लिए अपनी मनोव्यथा को भूल जाता। कश्मीर सुषमा पर मोहित हो जाने और कला का दर्शन करने के लिए वह कश्मीर आया।

आधी रात के समय जब संसार के कर्म-शिथिल प्राणों में निद्रा का प्रवेश होता; जब राकापति पूर्ण विकसित कुमोदिनी पर मुस्काता होता और जब मन्द-मन्द पवन के झकोरे प्राणों में मादकता का संचार करते; वह किसी चिनार वृक्ष के नीचे बैठकर अपने रबाब की ध्वनि और अपने सुरीले गीतों से वनराजि को चकित पुलकित करता। रात भर वह गाता और प्रातः-संध्या को उठकर चला जाता।

"उस देश का क्या नाम है?"—लालारुख़ के अधर फड़के।

"क्या ही अच्छा होता यदि आप यह प्रश्न न पूछतीं।" —फ़ामरोज़ ने कहा।

आँखें चार हुईं। दोनों ने एक दूसरे को देखा और पहचाना।

"आपको संगीत से ऐसी रुचि क्यों है?"—शहज़ादी ने

तर्जनी को अपने अरुण अधरों से सटाए हुए पूछा।

"मनोव्यथा जब असह्य होकर कहीं त्राण नहीं पाती; रुदन और क्रन्दन की गोद में भी जब उसे आश्रय नहीं मिलता, तब वह विवश होकर संगीत के चरणों पर जा गिरती है," फ़ामरोज़ ने मन्त्र-मुग्ध-सा होकर उत्तर दिया। उसने उसके मुँह की ओर देखा—कपोलों की लाली, आँखों की काली और अधरज को देखा।

और तब ही उद्यान के एक कोने से शोर सुनाई दिया—"शहज़ादी सलामत रहें! शहज़ादी सलामत रहें!!" धीवर शोर मचा रहे थे। लालारुख़ ने एक नौकर के हाथ रुपयों की एक थैली माहीगीरों में बाँटने के लिए भेज दी। रुपए पाकर धीवर उछल पड़े और शहज़ादी की दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते हुए चल दिए।

परीमहल के रमणीक उद्यान में बैठे हुए फ़ामरोज़ और लालारुख़ फिर मीठी-मीठी बातों में लग गये। हल्की हवा चल रही थी जो लाला के मृदुल कुसुमों के साथ अठखेलियाँ कर रही थी और चिनार के पत्तों को सिरसिरा रही थी।

"आप मुझे अपना गाना सुनाया करेंगे?"

"क्यों नहीं! मेरे लिए यह सौभाग्य की बात होगी—" फ़ामरोज़ के होठों ने कुछ मुस्करा दिया।

"धन्यवाद!"—शहज़ादी की पलकें बोलीं, उनके होंठ एक बार फड़फड़ाकर मुस्कराये। फिर दोनों चुप हुए।

× × ×

जब दिनकर की किरणें नृत्य करती हुईं पर्वतमाला की गोद में स्थित कलकल करते डल सरोवर के निर्मल पानी पर पड़कर अपने को शीतल करती जातीं; जब कश्मीर के पहाड़ी झरने रवि-रश्मियों द्वारा सुवर्ण-रंजित शिलाखण्डों से टकराकर अजस्र-वेग में झर-झर कर सरोवर में गिरते; जब मेघमाला विभूषित व्योम में पक्षियों की एक जोड़ी चहकती हुई उड़ती जाती; लालारुख़ फ़ामरोज़ के हाथ में हाथ दिये निर्झर का निनादमय संगीत सुनते हुए और लहलहाते फूलों के चमनों की ओर संकेत करके कहतीं —'कितने प्यारे हैं यह लाला के फूल !'

'कितने मोहक हैं लाला के जैसे रुख़सार !' फ़ामरोज़ शहज़ादी के कपोलों की ओर देखकर कहते, और दोनों मुस्करा देते।

जब संध्या गिरि-श्रेणी पर अपनी शोभा दिखाती; मकरन्द पान कर, पुष्प को छोड़कर जब मधुप मुकुल की टोह में गुंजार करता हुआ उड़ जाता और ग्रामीण लोग कन्धे पर हल उठाए घंटियों के मीठे स्वर में कश्मीरी ग्राम्य-गीतों का अलाप मिलाते हुए, बैलों की जोड़ी को आगे धकेलते घर की ओर प्रत्यावर्तन करते, लालारुख़ कह उठतीं—'वास्तव में कश्मीर रमणीक प्रदेश है !'

राजकुमार अस्त होते हुए सूर्य की ओर देखकर गुदगुदाते—और संसार की सुन्दरतम—कृति—लालारुख़ ?'

तब शहज़ादी के मुँह पर स्मित-रेखा खिंच जाती।

जब निशापति विमल चाँदनी चारों ओर छिटकाकर डल सरोवर के पानी में अपना आभास देखने लगता, जब तरुमालिकाएँ अपने रंग को छोड़कर धवलित हो जातीं, और किसलय का आँचल

झूम-झूमकर मदोन्मत्त हो जाता; फ़ामरोज़ गाकर कहता—'कितना सुन्दर है यह चाँद!'

लालारुख़ उसके बाल सँवारते हुए कहतीं—'कितने रसीले हैं तुम्हारे गीत!'

ग्रीष्म-ऋतु बीत गई और पतझड़ आ गया।

लालारुख़ ने प्रस्थान की तैयारियाँ कर लीं तो फ़ामरोज़ का पता नहीं चला। बहुत ढूँढ़ने पर भी वह नहीं मिला। विवश होकर शहज़ादी को दिल्ली लौट जाना पड़ा, क्योंकि बाद में पीर-पंजाल के दर्रे बर्फ से बन्द हो जाने का डर था और चूँकि औरंगजेब की आज्ञा थी—'लालारुख़ का विवाह बुख़ारा के राजकुमार फदलुद्दीन के साथ रचाया जाना है।'

वापसी पर लालारुख़ के मुँह से कश्मीर सुषमा की प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं निकला—उन्हें सारा संसार सुनसान प्रतीत होता था। उनके मन में विरह की वेदना थी और आँखों में थी पानी की बरसात!

× × ×

आलमगीर ने लालारुख़ का विवाह बुख़ारा के राजकुमार फदलुद्दीन से रचाया। दूसरे दिन फदलुद्दीन और लालारुख़ को बुख़ारा जाना था, अतः प्रस्थान की तैयारियाँ हो रही थीं। रीति के अनुकूल लालारुख़ दिल्ली के शाही महल के एक सुसज्जित कमरे में सायंकाल को बैठी फदलुद्दीन की प्रतीक्षा कर रही थी।

द्वार खुला। राजकुमार ने कमरे में प्रवेश किया।

"कौन?"—लालारुख़ ने फदलुद्दीन के मुख की ओर देखते हुए हर्ष भरे स्वर से कहा।

"बुख़ारा का शहज़ादा फ़दलुद्दीन ?"—शहज़ादे ने मुस्करा-कर कहा ।

"फ़ामरोज़ ! फदलुद्दीन ?" लालारुख़ की आँखों से प्रसन्नत क मारे उष्ण अश्रु-धारा बह निकली।

"हाँ, लालारुख़, दोनों मैं ही हूँ !"

२

कश्मीर विजय

"पगली है तू!"—बीरबल ने अपने हाथों से कमला के आँसू पोंछ दिये। "रोते-रोते आँखें सूज गई हैं। कल रात से एक कण भी मुँह में नहीं गया है, देखो, यह तुम्हारा मुख-कमल कैसे मुर्झा गया है!"

"न जाइये, नाथ!"—अविरुद्ध कण्ठ से कमला ने कहा। उसके नयनों से उष्ण अश्रुधारा बह निकली और पल भर में हिचकियाँ लग गईं।

"न जाऊँ?"—कहकर बीरबल दर ने तनिक मुस्करा दिया। "जानती नहीं कि जब्बारखां का बुलावा है—शाह अहमद दुर्रानी के आमिल का?"—उसने कमला के अस्त-व्यस्त केशों को अपने दाहिने हाथ से सँवारते हुए कहा।

"जानती क्यों नहीं!"

"तो, फिर?"

नयन-नीर की दो बूँदें कमला के हृदय को बेधती हुई उसके कपोलों पर ढरक गईं। श्रीनगर की एक गुमनाम गली में वह जर्जर झोंपड़ी और फागुन का महीना। घास-फूँस की छत और मिट्टी की दीवारें पानी की बाढ़ को कहाँ तक रोक सकतीं। पानी रिस-रिस कर भीतर आ रहा था और घर की प्रत्येक वस्तु

गीली हो चुकी थी और साथ ही कमला की वेदना रूपी वह्नि से हृदय के उद्‌गार गरम आँसुओं के रूप में अजस्र धारा बहा रहे थे। उसका फिरन तक भीग गया था।

"अहमदशाह दुर्रानी ने ही तो आपके पिता के प्राण लिये थे और आपकी माँ और बहन को विष खाने को मजबूर किया था।"—कमला की देह में कँपकँपी-सी जान पड़ी। याद आ गये उसे वह दिन जब कश्मीर पर यवनों के अत्याचार के काले बादल छा रहे थे। जब जीवित कश्मीरियों को भेड़ों की तरह पकड़कर बोरियों में बन्द करके या तो डल सरोवर के ठण्डे पानी में डुबो दिया जाता था या जीवित ही जला दिया जाता था और उनकी भोली-भाली स्त्रियों का अपहरण कर उनका सतीत्व नष्ट किया जाता था। बहुत छोटी थी कमला उन दिनों, इसलिए उन बातों की स्मृति कुछ धुँधली हो चली थी।

"आज शायद मातृ-भूमि आपके प्राणों की भेंट चाहती है—प्राणों की!" हृदय का बाँध टूट गया। अश्रुप्रवाह कमला के कपोलों एवं वक्षस्थल को आर्द्र बनाने लगा।

"लाखों की आबादी में ले-देके हिन्दुओं के ग्यारह घर बच पाये हैं।"—बीरबल का स्वर गंभीर था—"क्या मालूम कब इनकी भी मौत आ जाय!"

"न जाइये, नाथ!"—अश्रुपूरित कण्ठ से वह बोली। ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके आँसुओं में समस्त संसार आप्लावित होना चाहता है।

"जब्बारखां का बुलावा है। जाऊँ कैसे नहीं?"—बीरबल ने

ताक पर से पगड़ी उठाकर सिर पर रखी। अपने प्रदीप्त श्यामल भाल पर केसर तथा चन्दन का तिलक लगाया और ध्यानमग्न हो गया। झोंपड़ी के एक कोने में पड़ी सूखे पाटल के पत्तों से शृंगरित नटनागर की प्रतिमा मुस्करा रही थी।

"पंडित जी!" द्वार पर किसी ने दस्त दी। बीरबल दर की पलकें खुलीं, कमला की चेतना जागी।

"कौन ?"

"मैं हूँ महमूद।" कुटी का द्वार खुला और महमूद सहमा हुआ अन्दर आया। "पंडित जी, भाग नहीं गये आप!" धीमे स्वर में उसने कहा, "साज़िश बन चुकी है, भाग जाइये—आज ही।"

तन्द्रिल तन, मैले-फटे चिथड़ों और गीली चादर से दुर्गन्ध की लपटें आ रही थीं। नंगे सिर और नंगे पाँव वह दौड़कर आया था। पावस के उस धुँधले मध्याह्न में वर्षा के कारण उसका सिर और उसकी चादर अच्छी तरह भीग चुके थे, और टाँगें घुटनों तक कीचड़ में धँस जाने के कारण विचित्र-सी दिखाई पड़ती थीं। "मेरी मदद की कोई ज़रूरत हो तो गुलाम हाज़िर है।"—अपनी चादर के एक कोने से पानी पोंछते हुए उसने अत्यन्त विनम्र भाव से कहा।

बीरबल दर ने सिर उठाकर झरोखे से बाहर देखा—गिरिराज के ऊँचे-ऊँचे शिखर, हेमन्त के तुषार से सुशोभित, अपने अपूर्व सौन्दर्य को जलधर-जाल में छिपा रहे थे। पावस की धुन्ध गिर-गिर कर पर्वतों के आँचल में समतल भूमि पर निर्मित

गोजरों की नन्हीं-नन्हीं झोंपड़ियों को अपने आर्द्र वक्षःस्थल की कवरी भार सौंप रही थी। वर्षा ऋतु की सीरी पवन अपने सुकुमार पंखों पर नन्हीं नीर-फुहियों को उड़ा लेती हुई पक्षियों में आनन्द-दायक गान भर रही थी।

"वक़्त कम है और जाना बहुत दूर है"।—महमूद के होंठ हिले।

"हाँ, लाहौर यहाँ से दूर है, बहुत दूर!"—बीरबल ने एक दीर्घ निःश्वास लिया, "जब्बारखां को अपने जासूसों पर पूरा भरोसा नहीं है क्या?"

महमूद तो गँवार था—बुद्धि तीव्र न थी उसकी। पंडित जी की ऊटपटांग बातें वह न समझ सका। मकतब उसके गाँव से पूरे दस कोस की दूरी पर था, इसलिए, उसके पूर्वजों में से भी किसी ने दो अक्षर सीखने की 'बड़ी भूल' करने का साहस कभी न किया था। खेती का हिसाब रखना तो दूर, वह दस तक गिनना भी नहीं जानता था। हाँ, उँगलियों पर शायद आठ तक गिन लेता था।

"पंडित जी, मैं गँवार हूँ—गाँव का हूँ मैं।"—आतुरता भरी आशंका से उसने कहा।

"नहीं, नहीं, असल में वह बात नहीं।"—बीरबल ने अपनी मूँछों पर हाथ फेरा,—"पकड़ा गया तो?"

"तो.....!"

"कहो, तब क्या होगा?"—बीरबल मुस्करा दिया।

"होगा क्या?"—महमूद का मुँह उतर गया। उसने अपना मुँह नीचे को कर लिया। बरबस ही उसकी आँखें खिल उठीं—

"अल्लाह आपके साथ है—मेरा परवरदिगार ! मैं रोज़ उसकी बारगाह में दुआ किया करूँगा ।"

"महमूद, तुम सच्चे दोस्त हो । तुम्हारे जज़बात की मैं कद्र करता हूँ । भगवान् तुम्हें हमेशा ख़ुश रखे ।" —बीरबल दर को लगा, एक साक्षात् देवता उसके सामने खड़ा है—वह महमूद । "पहले मैं जब्बारखां के पास जाऊँगा ।"

"पंडित जी !" —महमूद चौंक पड़ा, उसके ललाट पर प्रस्वेद-कण झलकने लगे । कमला की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई ।

"हाँ, पहले उसके पास ।"—वह खड़ा हो गया—"नहीं तो उसे शक होगा ।"

"मगर !"—विक्षिप्त स्वर से महमूद ने कहा ।

बीरबल ने अपने पुलहरू में पाँव डाले । उसके मुख पर चिन्ता अथवा ग्लानि की एक रेखा भी दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी । उसकी नुकीली मूँछ, केसर तथा चन्दन के तिलक से सुशोभित उसका अशस्त भाल और फूले गाल—दिव्य मूर्ति थे वह ।

"यक़ीन कीजिये ।"—महमूद का गला भर आया—"आप वहाँ से जिन्दा ! हाय मेरे अल्लाह, मैं बदनसीब !" नेत्रों में अश्रु भरकर बड़ी दीनता से उसने कहा ।

"शाम के सात बजे जब्बारखां के महल की शुमाली डेवढ़ी क समीप तुम अपना होशियार घोड़ा लेकर मेरी प्रतीक्षा करना—सुना तुमने ?"—बीरबल ने महमूद से कहा ।

"गुलाम हाज़िर होगा ।"—महमूद ने सिर झुकाकर आज्ञा

स्वीकार की। उसकी आँखों से बेरोक आँसू बह रहे थे—बच्चों की तरह रो रहा था वह। सरदी के कारण उसके दाँत बज रहे थे, सारा शरीर थर-थर काँप रहा था और सिर में ज़ोर की पीड़ा हो रही थी।

"मगर, मान जाइये मुझ गँवार की बात—गुलाम की सलाह।" उसके वचन उसके अन्तर की सच्चाई प्रदर्शित कर रहे थे।

"नाथ, उस ओर मौत है!"—व्याकुलता अपनी सीमा पर पहुँच गई थी।

"और कर्त्तव्य भी है उस ओर। अब और नहीं सहा जा सकता। कश्मीर को किसी दिन आततायी के पंजे से मुक्ति दिलानी होगी। समय आ पहुँचा है, इस अवसर को चूकना कायर के अतिरिक्त किसका काम हो सकता है?" वचन गम्भीर थे। उसका मुख किसी दिव्य-तेज से उज्ज्वल हो उठा। कमला ने उसके चरणों पर मस्तक रख दिया।

बीरबल कुटी से बाहर आ गया। महमूद आँसू पोंछता हुआ पीछे हो लिया। कमला ने मुस्कराते नटनागर की वह प्रतिमा अपने सीने से लगा ली। जब तक वह दिखाई दिया, कमला निर्निमेष नयनों से झरोखे से देखती रही। बाद में नीचे बैठ गई, सिसकियाँ लेते हुए।

× × ×

"कुतुबखां," कश्मीर के आमिल अब्दुल जब्बारखां ने पूछा, "हमें बताओ कि इस साल किसानों से मालिये के तौर पर कितनी रक़म वसूल की गई?"

"हुजूर, आज तक कोई बीस लाख रुपये सरकारी खज़ाने में दाख़िल किये जा चुके हैं।"—मन्त्री कुतुबखां ने नतमस्तक होकर कहा।

"याद रहे मुग़लशाह औरंगजेब के अहद हुकूमत में सिर्फ़ तीन लाख की आमदनी थी।"—पास ही बैठे हुए मुशीर बीरबल दर ने कहा।

जब्बारखाँ ने पैशाचिक हँसी हँसकर कहा, "हाँ बीरबल, ऐसा सिर्फ़ जब्बारखां ही कर सका। बीस लाख रुपये एक पठान अपने ज़ोरे बाज़ू से हासिल कर सकता है। किसी और की मजाल नहीं।" गर्व-पूर्ण मुद्रा से कहे गये इन शब्दों से सारा कमरा गूँज उठा। जयराम भान, रामनाथ तिक्कू और अन्य दरबारियों के दिल दहल उठे। हिन्दू होने के कारण जयराम और रामनाथ ने अपने प्राणों का मोह त्याग दिया था, किन्तु फिर भी कोई महा-काल के मृत्यु-पाश में स्वयं अपने को बाँध देने का इच्छुक कैसे हो सकता है। एक ही साथ उसके दिलों में भय एवं कौतुक के दो स्रोत बह चले।

"यह बीस लाख रुपये ग़रीब कश्मीरी किसानों का ख़ून है, उनकी जान।"—बीरबल ने कहा। जब्बारखां के दरबार में एक कश्मीरी पंडित—एक 'काफ़िर'—ऐसी बात कहे अपने मुँह से निकाले और पठानों की तलवारें उनके म्यानों में ही पड़ी रहें। यह असम्भव-सा जान पड़ता था। दरबारियों के नेत्र खुले थे। पर वह स्तब्ध हो गये, मूक—चेष्टाहीन।

"हाँ, ख़ून! सौ बार ख़ून!"—गर्ज हुई जब्बारखां की,

"कश्मीरियों का सुर्ख ख़ून ! कश्मीर की सर ज़मीन को इन बाज़ुओं ने फतह किया है।"—जब्बारखां ने अपनी भुजाओं को हिलाते हुए कहा, "हक है यह इन्हीं बाजुओं का। कश्मीर हमारी मिल्कियत और कश्मीरी हमारी जायदाद हैं। हम चाहे उनका ख़ून लें, और चाहे उनकी जान!"

जब्बारखां ने थोड़ी-सी वारुणी ली। फिर अपनी मूँछों पर हाथ फेरते हुए हिमाच्छादित, गगनचुम्बी शैलमाला के एक ऊँचे शिखर पर दृष्टि डाली। उसे लगा, वह जलधर-टूक-मुकुट से सुशोभित निर्जीव, अपनी चिर-प्रसारित मूक भाषा में उनके कानों में कुछ कहने का प्रयत्न कर रहा हो—कितने बरसात देखे मैंने कितने पतझड़! वसन्त कभी-कभी ही देखा। हिन्दू-राज्य की अवनति देखी! नूरजहां को अपनी तलहटी में सिसकियाँ लेते देखा। आलमगीर की मौत देखी! अवन्तिपुर का दाहन भी देखा। डल सरोवर के बीच 'बट मज़ार'—हिन्दुओं के मज़ार—में निर्दोष प्राणियों को अन्तिम साँस लेते देखा ....।

"काफ़िर भी तो हकूमत किया करते थे कश्मीर पर—" अपमानसूचक व्यंग्य भरे स्वर से जब्बारखां ने कहा, "और, वह बुज़दिल अकबर। हूँ! हुकूमत चलाने का सबक़ किसी ने उन्हें सिखाया ही न था।"

"ख़ता माफ़ हो, बीरबल अपमान नहीं सह सकता।" किसी की सहन-शक्ति की भी कोई सीमा होती है। और बहुत छोटी हद होती है कश्मीरी पण्डित के सहने की। बीरबल दर के स्थान में अगर कोई अरब होता तो उसकी तेग़ बाहर

चमकी होती; मगर वह विवश था--बिल्कुल लाचार।

"बट मज़ार ही पठानों की एक यादगार रहेगी," प्याली की अन्तिम बूँद तक जब्बारखां ने चाट डाली। "कश्मीरी, जो कोई भी हो--काफ़िर या मुसलमान--उसके साथ एक-सा सलूक किया जायगा।"

साक़ी ने प्याली में मदिरा डाल दी। जब्बारखां ने अपनी प्याली अपने होठों से लगाई और एक ही घूँट में उसे खाली कर दिया।

"हम किसी के रहम पर यहाँ दिन नहीं काट रहे। हमारी दिमाग़ी क़ाबलियत ही हमारे लिए रोटी मुयस्सर करती है।" बीरबल ने एक बार अपना सारा धैर्य बटोरकर कहा। दरबारी जब्बारखां का मुँह ताक रहे थे--उनके होंठ मानों पिचक गये थे--और प्रतीक्षा में थे तड़ित की उन तीक्ष्ण प्रकाश-युक्त रेखाओं की, जो रिक्त गगन में विस्तृत होकर, निशा के तिमिर पट पर अपनी निष्ठुरता के भयावह चित्र अंकित कर देती हैं।

"हूँ ! दिमाग़ी क़ाबलियत ?"--साज़िश चूँकि बन चुकी थी, इसलिए जब्बारखां ने ज्यादा (जिससे काम बिगड़ जाने का डर था) कहना उचित नहीं समझा। "हमें उसकी कद्र है बीरबल ! आज तुम्हारी हमारे यहाँ दावत होगी। कहो, मंजूर है ?"

"घर की रूखी-सूखी रोटी ही मेरे लिए बहुत ह।"

ख़रगोश की जब मौत आ जाती है तो वह व्याघ्र के सामने खेलने-कूदने लगता है। जयराम और रामनाथ के बदन पानी

हो रहे थे। मुँह इतना पीला पड़ गया था जैसे शरीर में रक्त की एक बूंद न हो। रामनाथ के दुर्बल कंकाल के कम्पन से उसकी चौकी तक हिल रही थी। उसके मस्तिष्क में एक तूफ़ान उठ रहा था और अतीत के उदधि में उसकी जीवन-नौका हिल रही थी—हिलती-सी, डोलती-सी।

"तो आज रात यहीं ठहरो। हमें हुकूमत के बारे में तुम से एक ज़रूरी मशवरा करना है।"—जब्बारखां ने मदिरा की एक घूँट भर ली।

"मंजूर है मुझे हुजूर!"—बीरबल ने सिर हिलाते हुए अनुमोदन किया। "पहले हाथ धो आऊँ?"

"ज़रूर!"

यामिनी का साम्राज्य बढ़ चुका था। मेघ-माला-विभूषित व्योम में कहीं-कहीं तारे चमककर चित्त को चंचल कर रहे थे। नक्षत्रों के धीमे प्रकाश में पानी की नन्हीं बूँदें नृत्य करती हुई ऐसी लग रही थीं मानो अदृश्य निशापति, शृंगार के हेतु निशा-सुन्दरी की तन्द्रिल पलकों पर रजत-कणों की वृष्टि कर रहे हों। आकाश में टिमटिमाते तारे और कीचड़ में उनके प्रतिबिम्ब से, पवन के विचित्र मादक नृत्य से; तृषित चातक की हृदय-विदारक पुकार आदि से एक अत्यन्त सुन्दर सृष्टि की रचना हो चली थी। एक कुटी में मुस्कराते नटनागर की प्रतिमा अपने हृदय से लगाये एक सुन्दरी सिसकियाँ ले रही थी।

और श्रीनगर से आठ मील की दूरी पर एक कश्मीरी पण्डित अपना घोड़ा सरपट दौड़ा रहा था।

× × ×

"इतना बड़ा पीर पंचाल पर्वत !" माथे से प्रस्वेद फूट रहा था। साँस फूल रही थी। टाँगें घुटनों तक कीचड़ से लथ-पथ हो गई थीं। "आखिर इसे पार कैसे किया जाय !" बीरबल थक-कर चूर हो गया था। दो दिन और दो रात का सफ़र। एक झपकी न ली थी उसने। सिर में पीड़ा हो रही थी और शीत के कारण आँखों से पानी बह रहा था।

"बर्फ़ की एक गज़ मोटी तह शैलमाला की ओढ़नी बन चुकी है।" एक लम्बी साँस ली उसने। "चोटी तक पहुँचने से पहले ही शायद मैं कहीं सिर तक इसके अन्दर धँस जाऊँ।" आने वाली कठिनाइयों की उसे कुछ चिन्ता न थी और न बीती हुई मुश्किलों का कुछ ग़म। घोड़े की पीठ पर बिना कुछ खाये-पिये वह दो रात और एक दिन दौड़कर पीर पंचाल की तराई तक आ पहुँचा था। उसका शरीर आखिर कहाँ तक काम कर सकता! ताक़त ने भी कोरा जवाब देना शुरू किया था।

"यदि मैं इसे आज न पार कर सका तो कल दिन में ही····"

उसकी आँखों के सामने आया---जब्बारखां का पठानी चेहरा! कितना भयानक और कुरूप था वह! उसका पठानी जबड़ा, लम्बी मूछें जो कानों तक पहुँचने का प्रयत्न कर रही थीं, मुँह पर बढ़ी हुई दाढ़ी, मोटे होंठ, बड़े नथने, आवस के मद से लाल आँखें, चौड़ी पेशानी आदि उसे संसार का सबसे भयंकर एवं कुरूप जीव बनाने के प्रयास में पूर्णरूप से सफल हो रहे थे।

"कहीं मिल जाऊँ तो कच्चा ही चबा जायगा, बेरहम कहीं का।" जब्बारखां गरजता भी था, और दिन में कई बार।

जब भी नगरवासियों ने उसे गरजते सुना, कई निर्दोष प्राणियों को मृत्यु-शय्या पर सोना पड़ता। "तो क्या हो ?"—बीरबल दर ने सोचा—"आज पहुँचना होगा उस पार, अवश्य।"

उसका अंग-अंग ढीला हो रहा था। खड़े रहने की शक्ति अब उसमें न थी। बैठ गया वह बर्फ़ पर, कपड़े समेटकर और पास ही खड़ा घोड़ा बार-बार अपनी ग्रीवा ऊपर उठाकर हिनहिनाने लगा। उसके जीवन की सारी कठिनाइयाँ इकट्ठी होकर आज ही उससे बदला चुका लेंगी। "कितना अच्छा है महमूद !—एक आदर्श।" चित्र उसकी आँखों के सामने एक-एक करके आने लगे। कमला का हृदयविदारक रोदन; रामनाथ और जयराम के निर्दोष मुख; मगर, जब्बारखां की वह आँखें ! घूर रही थीं—भयानक····! !—

"राही !"—कोमल स्वर से किसी ने कहा।

"कौन ?"—बीरबल ने चौंककर देखा।

"मैं, एक गोजर।"—साधारण-सा उत्तर था।

"ओह, आओ भाई, बैठो !"—बीरबल सरल दृष्टि से गोजर की ओर देखने लगा, मानो वह उसका रहस्य समझना चाहता था।

"यहाँ इस बर्फ़ पर ?" गोजर बीरबल के समीप आकर रुक गया।

"हाँ, न····न बैठो। सरदी लग जायगी।"—बीरबल के दाँत बज रहे थे, सारा शरीर काँप रहा था उसका।

गोजर का दिल भर आया। वह आख़िर मानव ही तो था। "पर तुम ?" उसने पूछा।

"मैं ? मैं—ओह ! ठीक कहते हो भाई !"—बीरबल ने उठने का प्रयत्न किया; मगर उसकी टाँगें अकड़ गई थीं। उठ कैसे सकता था ? उसने सोचा, यदि वह और कुछ देर विश्राम करता तो वह सरदी के मारे वहीं जम जाता—किसी को पता तक न चलता उसके शव का भी। सुनसान जगह में उसकी ख़बर लेने वाला कौन रखा था ?

"बहुत थके हुए दिखाई देते हो ? राह भूल गये हो शायद ? गोजर का स्वर नम्र था। आग से भरे हुए मिट्टी के एक पात्र 'काँगड़ी' को, जो उसने अपने पेट से लगाये रखा था, बाहर निकालकर बीरबल के आगे रख दिया। "ज़ोर की सरदी पड़ रही है। लो अपने हाथ गरमा लो।"

काँगड़ी बीरबल के लिए संजीवनी का काम कर गई। कुछ होश आ जाने पर गोजर ने उससे पूछा, "कहाँ से आये हो ? कहाँ जाना है ?"

"आया तो बस यहीं से हूँ। लाहौर जाना है मुझे।"

"लाहौर बहुत दूर है यहाँ से—मालूम है तुम्हें ?"

"जानता हूँ, मगर काम बहुत ज़रूरी है, जाना ही होगा।" बीरबल ने काँगड़ी को गोजर के हाथों में दे दिया। वह घुटनों तक बर्फ़ में धँस गया था।

"किस काम से जा रहे हो—इतनी दूर ?"

"तुम्हें ज़ालिम जब्बारखां के पंजे से आज़ाद कराने के

लिए मैं पंजाब के राजा रणजीतसिंह से मदद की दरख़्वास्त करूँगा।" उठ बैठा वह और डगमगाता हुआ अपने घोड़े की ओर चल दिया। घोड़े ने तनिक हिनहिना दिया और अपने अगले सुमों से बर्फ़ीली ज़मीन को खुरचने लगा।

"अल्लाह! तुम्हें कामयाब करे। मेरी यही दुआ है।" गोजर ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा और बहुत दुआएँ दीं---तेरी कुदरत बेहद है, जलवा तेरा बेशुमार, सात आलम के बादशाह, तू इसकी हिफ़ाज़त कर।" उसकी पीली आँखों में दो छोटे अश्रुबिन्दु दृष्टिगोचर होकर क्षण भर में ही अदृश्य हो गये। स्मित की रेखा खिच गई उसके पीले मुँह पर।

"कुछ खा लो राही! भूखे मालूम होते हो।"---प्रेम भरे स्वर से गोजर ने कहा, "पास ही मेरी झोंपड़ी है। कुछ दूध पी लो---मकई का सत्तू हाज़िर है ग़रीबखाने पर।"

"ओ, शुक्रिया भाई!"---बीरबल ने प्रेमपूर्वक घोड़े की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा। "पहले इस पहाड़ को लाँघने की तरकीब बता दो---इसका रास्ता....."

"अकेले नहीं पार कर सकोगे। रास्ता ढूँढ़ निकालना तुम्हारे बस की बात नहीं।"

बर्फ़ को हटाकर मार्ग किसने बना लिया था उन शैलों पर। ग्रीष्म ऋतु मई के दो मास के लिए रास्ता खुला रहता है। बाक़ी दस महीने बर्फ़ के नीचे अलक्षित रहता है, जैसे फ़र्श के नीचे चूहे का बिल। मगर गोजर को क्या मालूम कि इन वचनों से बीरबल के दिल पर क्या बीतती थी।

"तो·····तो ?"

"कोई फिक्र नहीं। मैं अपने बेटे रहमान को तुम्हारे साथ कर दूँगा। वह तुम्हें राजोरी तक पहुँचा आएगा। इंशाअल्लाह कोई दिक्कत न होगी तुम्हें रास्ते में।"

डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। बीरबल के होठों ने मुस्करा दिया। हृदय में एक परम आश्वासन की अनुभूति भी होने लगी। "तब ठीक है। तुम्हारा बहुत शुक्रिया, भाई ! मगर जितनी जल्दी·····!"

"हाँ चलो।"

"चलो।"

बूँदें धीरे-धीर गिर रही थीं और काले बादल आकाश में छा गये थे। पर्वतों के वक्ष-स्थल पर नृत्य करती मेघमालाएँ भाँति-भाँति के चित्र उत्पन्न कर रही थीं। वीर पंचाल की तराई में एक कुटीर के द्वार पर बैठे गोजर ने दो नन्हे प्राणियों को निकट मार्ग में जाते देखा।

× × ×

"होशियार !" तुरगारूढ़ गुलाबसिंह की तलवार बाहर चमकी। घोड़ा रुककर बाहर खड़ा हो गया अपनी ग्रीवा ऊपर उठाये हुए। सवारों के शूल चमके, सैनिक सतर्क खड़े रहे और तोपें यथास्थान लग गईं। गोला-बारूद ठूँस-ठूँस कर भरा जा चुका था। सेनापति ने अपने चितकबरे घोड़े की पीठ से सारी सेना का निरीक्षण कर लिया था—पूरे चालीस हज़ार सिपाही श्रीनगर को घेरे हुए थे। मशालें भी जल चुकी थीं और उन्हें

थामे हुए थे तोपचियों के हाथ। पल भर की देर थी। सिख सम्राट् रणजीतसिंह के सेनापति गुलाबसिंह के मुँह से निकल पड़ेगा—"मार !" और शब्द पूरा होने से पहले ही सारा आकाश आग की लपटों और धुएँ से भर जाएगा। "धड़ाम् ! धड़ाम् !" की कर्ण कटु, महाघोर ध्वनि से दिशायें प्रतिनादित और प्रकम्पित हो उठेंगी। दूर वनों में निद्रित रीछ, छः मास की नींद के पश्चात्, चौंककर सूखे पेड़ों की कोख से बाहर निकल पड़ेंगे। पशु अपने अश्लेष बन्धन तुड़ाकर धनुष से छूटे हुए बाण की तरह दूर भाग जायेंगे और व्योमचर पंख फड़-फड़ाते हुए अपने नन्हें नीड़ों के अन्वेषण में कदापि सफल न हो सकेंगे। और वह हारी पर्वत का दुर्ग ? एक ईंट भी तो न मिल सकेगी उसकी ढूँढ़े।

गड्ढों को लाँघता और पत्थरों पर से उछलता हुआ एक सवार गुलाबसिंह की ओर आ रहा था। "ठहरो !" उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया और एकटक होकर उस सवार की ओर देखने लगा। "सत्गुरु भला करे।" उसका दिल धक् से रह गया। "क्या बात है, आखिर ?" समाचार सुनने के लिए—शायद नई आपति का सामना करने के लिए—वह तैयार हो गया पल भर में ही। कठिनाइयाँ झेलना उसके लिए साधारण-सी बात थी। आखिर अन्ततः विपत्तियों से खेलते हुए ही तो उसने सेनापति की पदवी पाई थी। उसने बीरबल दर को आतुरता से अपनी ओर आते देखा। बीरबल का घोड़ा सामने आकर रुक गया। "सत् श्री अकाल" का उत्तर उसने "नमस्कार" से दिया।

"दर, कहो कोई समाचार है क्या—कोई बात ?"

"कुछ नहीं सरदार साहब ! कुशल है भगवान् की कृपा से।" घोड़े की साँस फूल रही थी। सारे बदन से प्रस्वेद फूट रहा था उसके।

"तो जल्दी में क्यों आये, दौड़ते हुए क्यों आये ?"—गुलाबसिंह ने पूछा।

"कुछ कहना था आपसे—एक ज़रूरी बात। यदि····!"

"क्या ?"

बीरबल का घोड़ा समीप खिसक आया। उसने रास खींच ली। "शहर पर गोला-बारी न की जाय। वे निहत्थे, निर्दोष नागरि·····।"

"ह—ह—ह !"—गुलाबसिंह हँस पड़ा। उसके होठों ने स्वगत ही धीरे-धीरे कुछ बोल दिया। फिर घोड़े की लगाम ढीली करके उसने मुस्कराते हुए कहा, "तो युद्ध किसके साथ किया जाय ? जब्बारखां की सेना का एक सिपाही भी कहीं दिखाई नही पड़ता। और गुलाबसिंह ने आज श्रीनगर को फ़तह करने का निर्णय किया है। मेरी इच्छा फिर पूरी कैसे होगी ?"

"पूरी होगी और अवश्य होगी !"

बीरबल यदि राजनीति मे होशियार है, फिर भी उसे फ़ौजी कामों का बहुत कम बोध है। वह यदि जब्बारखां के दरबार में सम्मान प्राप्त कर सका था (और उस समय की सबसे बडी बात अर्थात अपने प्राणों की रक्षा कर सका था) तो

केवल चातुर्य और राजनीति-कला-कौशल के आधार पर ही।

"फिर जीत नहीं सकूँगा मैं—आज नहीं।" गुलाबसिंह ने अपना सिर हिला दिया। "पीर पंचाल के दर्रे से यहाँ तक मैं उन्हें हराता आया हूँ, और·····।"

"चिन्ता की कौन-सी बात है?"—बीरबल के मुँह पर स्मित की एक रेखा खिच गई। "मुझे अपने गुप्तचरों द्वारा पता चला है कि जब्बारखां अपनी बची सेना के साथ, शहर खाली छोड़कर गिलगित की ओर भाग गया है।"

"सच कहते हो पण्डित?"

"सरदार ने मुझे झूठ बोलते कब सुना है?" बीरबल दर का उत्तर सुनकर गुलाबसिंह बहुत प्रभावित हुआ। "कितने हँसोड़ हो तुम! तो····" उसने म्यान से तलवार खींच ली, हाथ को ऊपर उठाया और लगाम को कस लिया—"हम हुक्म देते हैं कि सारी खालसा फ़ौज, बे-रोक, इसी दम श्रीनगर में घुस जाय!"

धूल के बादल उठने लगे। खच्चरों ने तोपों को खींचा, सवारों ने एड़ी लगाई। महावतों ने अपने अंकुश हाथियों की पीठ में चुभो दिये, और विजय-पताका फहराने लगी।

"कश्मीर अब हमारी जायदाद है।" —गुलाबसिंह ने रास ढीली की। घोड़ा सरपट दौड़ पड़ा।

"तुम्हारी?—या कश्मीरियों की?·····!"

बीरबल का अश्व भी पीछे-पीछे दौड़ पड़ा।

× × ×

वसन्त की सान्ध्य-वेला ! भुवन-भास्कर अपनी तेजहीन रश्मियों से प्रतीची का सुवर्णरंजन कर रहे थे। सुरभित पवन के झकोरे रंग-बिरंगे फूलों से अठखेलियाँ करते हुए उनके प्राणों में मादकता का संचार कर रहे थे। अन्धकार अपने आगमन की सूचना देता हुआ, चिनार के विशाल पेड़ों--जिनकी प्रशाखाओं में छिपी कोकिलें 'कुहू-कुहू' स्वर भर रही थीं--की ऊँची टहनियों के कोमल किसलयों को श्यामल रंग में रंग रहा था। हिमखण्डविभूषित शैल-मालाओं की श्याम रेखा, लालिमा के रंगों में मिलकर आँखों में मस्ती ला रही थी।

बीरबल दर ने महमूद के घर जाकर देखा--मुस्कराते नटनागर की प्रतिमा अपने हृदय से लगाये और अपने कमनीय अंगों से सौन्दर्य बिखेरते हुए एक अनुपम सुन्दरी मुस्करा रही थी।

३

चित्रलेखा

मुख पर मनोहर छवि, अंगों में चापल्य, वाणी में सरसता, नयनों में मादकता, अधरों पर मधुर हास्य और कपोलों पर अरुण ज्योति लिये नर्तकी चित्रलेखा श्रीनगर मे महाराज अभिमन्यु के उद्यान में विचर रही है। पावस के मनोहर मध्याह्न में मेघमालाविभूषित गगन की छाया सघन देवदारू-वनों मे पड़ रही है। केसर की कलियों को आर्द्र और पवन को शीतल करने वाली नन्हीं बूंदों का गिरना बन्द हो गया है। वारिद-टूकों में से झाँकते हुए दिनमणि का अवलक प्रकाश प्रकृति के उपकरणों को अनेक रंगों में रंग रहा है। फूलों, पौधों और लताओं से सुसज्जित वह राजोद्यान तो बहुत ही आकर्षक था। छोटे हिरन उछलते-कूदते बाग़ के एक कोने से दूसरे कोने तक दौड़ जाते और बहुरंगी मयूर पंख फड़फड़ाते हुए एक लता से दूसरी पर फुदकते हुए चित्त को चंचल कर रहे थे।

बाग़ के एक कोने में देवदारू वृक्ष की एक ऊँची डाल में रेशम की डोरियों से बँधा हुआ एक झूला पड़ा था। चित्रलेखा ने रेशम की एक डोरी को पकड़ा और अपने कोमल हाथों से एक हिरन के कान पकड़कर और अपने समीप खड़ा करके उसका मुँह सहलाने लगी। बार-बार उसकी आँखें उद्यान के

द्वार पर किसी को ढूंढ़ने लगतीं और फिर उस मृग के लोचनों पर कटाक्ष-सा करके उनसे अपनी बातें कहतीं। हिरन को छोड़कर चित्रलेखा झूले पर जा बैठी। नव-पल्लवित लताओं के बीच झूला धीरे-धीरे हिलने लगा। उसकी साड़ी का अंचल बरसाती पवन से उड़ने लगा और केश बिखरकर मुँह पर आ गये। आँखों से प्रेम की बातें करने से पहले वह महाराज को अपनी मोहिनी छवि दिखाना चाहती थी।

महाराज अभिमन्यु ने उद्यान में प्रवेश किया। चित्रलेखा के भृकुटि-विलास और लोचन-कटाक्ष के कौशल को देखकर वह एक क्षण के लिए चंचल हो उठे। चित्रलेखा झूले से उतरी और महाराज उनके समीप आ गये। उनके प्रफुल्ल मुख से तेज और दृढ़ता झलक रही थी। ऊँचा कद, गोरा रंग, विस्तृत वक्ष-स्थल, उन्नत मस्तक, मुँह पर मीठी मुस्कराहट और लोचनों में हृदय-हारी तेज था। चित्रलेखा के मुख-कमल की ओर देखते हुए, स्नेह-कोमल शब्दों में उन्होंने कहा, "प्रिये, मुझे क्षमा करना। आज़ आने में कुछ असाधारण-सा विलम्ब हो गया। इसमें मेरा कोई दोष नहीं। राजमाता से एक आवश्यक बात पर परामर्श हो रहा था।"

"मैं यहाँ आपकी प्रतीक्षा में बैठी, मीठी कल्पनाओं के स्वप्न-साम्राज्य में विहार कर रही थी। आपको अब हमारी चिन्ता···!'

"चित्रलेखा, ऐसा मत कहो!"—आर्द्र कण्ठ से महाराज ने कहा। "क्या तुम्हें इसमें कुछ सन्देह है कि मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकूँगा? इन हिरनों, पक्षियों,

लताओं, पुष्पों और इस झूले के पटरे से तुमने कभी न पूछा कि अभिमन्यु किस प्रकार निर्दिष्ट समय से पहले ही आकर तुम्हारी प्रतीक्षा में इस उद्यान में भटका फिरा करता है ? इस दिल से पूछो, जिसमें तुम आज से बहुत पहले ही समा चुकी हो। इन आँखों से पूछो चित्रलेखा, जिन्हें तुम्हारी मनोहर छवि के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता।"

"महाराज, मैं शिकायत ही कब करती हूँ। आपका आना ही क्या कुछ कम अनुग्रह है। आपके प्रदीप्त मुख कमल की ओर देखते ही तो मेरे श्वास आते-जाते हैं।" चित्रलेखा डोरी को पकड़कर झूले पर बैठी। झूला धीरे-धीरे हिलकोरे खाने लगा। "किन्तु आपको इसका प्रायश्चित करना पड़ेगा। आज मैं आपको बन्दी बनाकर ही छोड़ूँगी।"

"यदि प्रेम के बन्दीगृह में पड़े रहना ही मेरे लिए प्रायश्चित हो तो मैं जीवन-पर्यन्त तुम्हारा बन्दी रहने को तैयार हूँ।"—प्रेम-मुग्ध नेत्रों से देखकर अभिमन्यु ने कहा।

झूला पेंग ले रहा था और चित्रलेखा के सुनहरे केशों की लपटें मृणाल-तन्तुओं की तरह पावस की शीतल हवा में बिखर रही थीं। झेलम तट के उस कुञ्ज में फव्वारों से पानी रिमझिम बरस रहा था। तृषित लताओं और देवदारू-पल्लवों से हल्की-हल्की जल-फुहियाँ गिर रही थीं। फव्वारों के समीप पानी में सुन्दर हंस और रंग-बिरंगी जल-जन्तु कलनादमय संगीत गाते हुए आपस में क्रीड़ा कर रहे थे।

"इन चंचल अलकों को अपने हाथों स सँभाल दीजिय।

बार-बार मुख पर छा जाते हैं।"—झूले से उतरकर नर्तकी ने कहा।"

"कौन ऐसा भाग्यवान पुरुष होगा, जिसे इन सुगन्धित, सुकोमल और चंचल केशों को स्पर्श करने का सुअवसर प्राप्त होगा !" अभिमन्यु का हाथ उठा। मुँह से केश हटाकर उन्हें अपने स्थान पर ले जाया गया।

"चित्रलेखा ! चाँद की शोभा तो वह घटायें ही हैं, जो उसके साथ आँख-मिचौनी खेलते-खेलते कभी श्रान्त नहीं होतीं। जब काली घटाओं के बीच निशापति चकोर की तृषित आत्मा को शान्त करने के लिए झाँकते हैं, तब ही तो प्रेमी प्रणय के गीतों में उनके रूप-सौन्दर्य की महिमा गाते हैं।"

"राजनीति में कुशल होने के साथ-साथ आप एक चतुर कवि भी हैं, मुझे इसका ज्ञान न था।"

"हाँ, जब तक तुम मेरी कल्पना बनकर रहोगी, तब तक ही तो मैं कवि कहलाऊँगा। मैं तुम्हारे प्रेम का उपासक हूँ, चित्रलेखा ! मैं वह वस्तु चाहता हूँ, जो इस परदे के पीछे छिपी हुई है। मैं चाहता हूँ कि तुम सदा मेरे साथ रहो। वैभव के स्वप्न की तरह, मल्लिका के हार की तरह !"—अभिमन्यु के इन शब्दों में निर्मल प्रणय झलक रहा था। चित्रलेखा ने उनकी ओर कनखियों से देखा। उन्हें रोमांच-सा हो गया। आज पहली बार चित्रलेखा के कानों में सच्चे अनुराग में डूबे हुए शब्द पड़े थे। उसे लगा कि महाराज की अतृप्त आँखें उसके हृदय की भीतर की दुनिया को देख रही हैं; और वह उस अन्धकार में देदीप्यमान दीप-शिखा

से अपने प्रश्न का उत्तर चाहती है। झूले की डोरी को छोड़कर उसने केश सँवारे और अरुण अधरों पर मीठी मुस्कराहट लाकर बोली, "महाराज, मैं इस प्रेमलता को अपने प्राण-जल से सींचूँगी; परन्तु यह नहीं कह सकती कि मुझे इसका फल खाने का सौभाग्य प्राप्त होगा या नहीं। कहीं कोई निर्दय माली आकर इस लता को समूल नष्ट न कर दे ।" उसके शब्दों से उदासीनता झलकने लगी। उसे राजमाता दिद्दा का स्मरण आ गया, जो उनके प्रेमाभिनय का पटाक्षेप करना चाहती थी। "दिल कहता है, किसी दुर्लभ वस्तु की आशा करना व्यर्थ है।"

उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया, और आँखें उठाकर गगन में पंख हिलाते हुए हंसों की जोड़ी की ओर देखने लगी। श्रावण-मास की शीतल, सुगन्धयुक्त हवा पुत्र-वात्सल्य माता की भाँति लताओं को हिंडोले में झुला रही थी, नवजात पल्लव उसकी गोद में मुस्कराते और प्रसन्न हो-होकर ठुमकते थे, चिड़ियाएँ उन्हें मधुर कलरव की लोरियाँ सुना रही थीं और रवि की स्वर्णमयी रश्मियाँ उनका चुम्बन कर रही थीं। सारी प्रकृति मानो प्रणयाभिनय में विलीन हो चुकी थी। चित्रलेखा के मन में एक शंका उत्पन्न हुई, जिसका वह समाधान चाहती थी।

"चित्रलेखा! जिस वस्तु को तुम दुर्लभ समझ रही हो, वह बहुत समय पहले तुम्हारी भेंट हो चुकी है। कहो, उसे स्वीकार करोगी?"—अभिमन्यु ने कौतूहल से पूछा।

"क्या उस मणि को ग्रहण करने की मुझ में सामर्थ्य है?" —मर्मभेदी कनखियों से देखते हुए चित्रलेखा ने पूछा।

"मेरा शून्य हृदय तुम्हारी ओर आँखें लगाये बैठा है। उसकी सूनी बस्ती में आशा का प्रदीप बनकर आओ।"

"मेरे लिए इससे बढकर और सौभाग्य की कौन सी बात हो सकती है कि मैं आपकी प्रेयसी बन सकूँ। पर....."

अभिमन्यु इस 'पर' का आशय न समझ सके। चित्रलेखा को वह किसी प्रकार अपने बहुत निकट ले जाना चाहते थे और इसमें कदाचित् वह किसी बाधा को न आने देना चाहते थे। गम्भीर होकर वह बोले, "तुम जानती हो कि मेरी तीन रानियाँ हैं। तुमने उन सबको देखा है। उनसे बातें की है। तुम ही बता सकती हो कि उनमें से कौन ऐसी है, जिसके प्रेमगृह में मेरे हृदय का वास हो सकता है? मेरा हृदय अक्षुण्ण है। आज तक इसे कोई भी अपना बन्दी नहीं बना सकी है।"

चित्रलेखा ने पाटल के एक लाल पुष्प को तोड़कर उसे सूँघा और दाहिने हाथ से उसकी एक पंखुड़ी काटकर बोली, "क्या आपने राजमाता से इस बारे में परामर्श लिया है? मैं आखिर एक नर्तकी....."

"दिद्दा से परामर्श?"—यह वाक्य मुँह से छूट जाने पर कश्मीर के महाराज अभिमन्यु की देह में कँपकँपी-सी हुई। दिद्दा के आगे वह ऐसी बात मुँह से कैसे निकाल सकते थे। अभिमन्यु महाराज तो थे, किन्तु नाममात्र; राज्य वास्तव में उनकी माता दिद्दा करती थी। "दिद्दा ही मेरे हृदय की व्याकुलता, मेरी उद्विग्नता तथा मेरी इन आँखों के पानी का मूल कारण है। उसे मनवाना ही पड़ेगा।"

"मना सकेंगे उन्हें ?"

"प्रयास तो अवश्य करूँगा।"

"और यदि प्रयास सफल न हुआ ?"

"तो प्राण दे दूँगा।" दिल की गहराई से उठकर यह भाव उनके होठों पर आ गये थे। अभिमन्यु को चित्रलेखा के हृदय में वह प्रकाश दीखता था, जिसकी एक रश्मि उनके दुःखी जीवन के अन्धकार का सदा के लिए नाश कर सकेगी। वह चित्रलेखा को विलास की नहीं, बल्कि प्रेम की वस्तु समझते थे। उनके हृदय में नित नई-नई प्रेम-कल्पनाएँ अंकुरित होती रहती थीं। "आज हमें अपने नृत्य का आनन्द न लेने दोगी ?" —पास ही एक फव्वारे के गिर्द बने हुए चबूतरे पर बैठते हुए वह बोले।

चित्रलेखा ने उनकी ओर देखा और कुछ मुस्कराकर बोली, "आज देह पर एक आभूषण नहीं। केवल एक साड़ी ओढ़े हुए हूँ, नाचूँ क्योंकर ?"

"चित्रलेखा ! तुम्हारा रूप-माधुर्य कभी इतना प्रस्फुटित न हुआ था, जितना आज इस गुलाबी साड़ी से हुआ है। तुम्हारे कोमल अंग तो आभूषणों का भार नहीं सह सकते, आभूषण वास्तव में भावों के अभाव का आच्छादन हैं। सौन्दर्य को आभूषणों की आवश्यकता ही क्या ! तुम नाचो, इस श्यामल हरियाली पर, और मैं अपने अतृप्त लोचनों से तुम्हारे मादक नृत्य को देखूँ।"

घुँघरूओं की ध्वनि स्वच्छ वायुमण्डल पर थिरक उठी। चित्रलेखा का अंग-अंग मानो, अंगराग में डूबा हुआ, पुलकित यौवन की सजीव मूर्ति बनकर नृत्य करने लगा। समस्त व्योम में

स्वर्गीय तितलियों की पंक्तियाँ-सी स्वयं प्रत्यक्ष होकर अपने दृश्यमान परों से नाचने लगीं। सुधा के इस अनन्त प्रवाह का आनन्द उठाने के लिए अभिमन्यु का हृदय, मानो उनकी आँखों के द्वार पर आ बैठा था। उद्यान के एक ओर से निकलकर एक आनन्द-मत्त मयूर अभिमन्यु के निकट आकर नृत्य करने लगा। वह निर्निमेष नयनों से दोनों का नृत्य देखने लगा। धीरे से हाथ उठाकर उन्होंने मयूर के चित्रित छत्र को पकड़ लिया; मयूर अपनी ग्रीवा एवं चंचू को नचा-नचा कर अधिकाधिक आनन्द का अनुभव करने लगा।

चित्रलेखा की हृत्तन्त्री में जीवन के कोमल संगीत का कम्पन हो रहा था, ठीक उस प्रकार जिस प्रकार सितार के अस्फुट स्वरों में संगीत का स्वरूप प्रस्फुटित होता है। उसकी चिर-तृषित प्रेमाकांक्षा व्याकुल हो उठी। तलफता हुआ दिल आलिंगन के लिए पुकार उठा। घुँघरू की छनन् के साथ मयूर और उसका नृत्य समाप्त हुआ। प्रकृति मानो सन्नाटे में डूब गई। न कहीं, पक्षियों का मधुर कलरव था, न फव्वारों का कलनाद और न ही नव-पल्लवों को लोरियाँ सुनाते हुए समीर की सायँ-सायँ। मन्द समीर में, मादक सुगन्ध में, लता-कुञ्ज में, रोम-रोम में उन्हें एक दूसरे का आभास दिखाई देता था। चित्रलेखा के लिए विश्व अभिमन्युमय और अभिमन्यु के लिए सारी सृष्टि चित्रलेखामय हो गई थी।

चित्रलेखा ने अपना मस्तक अभिमन्यु के वक्ष-स्थल पर रख दिया और दोनों बाहें फैलाकर उनके आकुल कण्ठ से लिपट गई।

× × ×

"मेरे रहते तुम्हारी इतनी हिम्मत कि एक नर्तकी से प्रेम करो!" राजमाता दिद्दा के शब्दों से कमरा गूँज उठा। "दिद्दा जब तक जीवित है, तब तक तुम उसकी इच्छा के विरुद्ध एक क़दम भी नहीं उठा सकते।"

अभिमन्यु ने एकान्त में अपनी माता दिद्दा के सामने यह प्रसंग छेड़ दिया था। अपनी ओर से उन्होंने यह भरसक प्रयत्न किया था कि दिद्दा से कुछ मीठी बातें करने के पश्चात् उससे चित्रलेखा को ग्रहण करने की अनुमति ली जा सके, किन्तु वह इसमें सफल होते दिखाई न देते थे। वह यद्यपि दिद्दा के पुत्र थे और उसके बहुत निकट रहते आये थे, तथापि उन्होंने दिद्दा के स्वभाव को या तो जाना न था या ऐसा करने में भारी भूल की थी। दिद्दा वज्र-हृदया थी। वह अपने स्वार्थ के लिए संसार की किसी ऐसी वस्तु को भी भेंट कर सकती थी, जो जनसाधारण के दृष्टिकोण से उसे अत्यन्त प्रिय ही क्यों न लगती हो। अभिमन्यु महाराज तो थे; किन्तु शासन दिद्दा करती थी। वह उसके हाथों की कठपुतली थे। आख़िर वे कर भी क्या सकते थे—निस्सहाय थे वे।

"क्या तुम अपनी तीन रानियों की प्रेमोपासना करके थक चुके, जो उस नीच नर्तकी को अपनी रानी बनाने की कामना को अपने दिल में स्थान दे रहे हो?" दिद्दा को कैसे यह स्वीकार हो सकता कि कोई नारी अभिमन्यु की निद्रित चेतना को जगाए और उसे अपनी अधिकार-याचना की प्रेरणा दे। वह कदाचित्

उसकी सोई हुई आत्मा को जगाने न देगी और ऐसा करने में तो वह कई बार अपने आपको निपुण सिद्ध कर भी चुकी थी।

दीन स्वर में अभिमन्यु ने कहा, "माँ ! मैं राजमाता की हैसियत से नहीं, बल्कि अपनी माता के नाते तुम से ऐसा करने की आज्ञा माँगता हूँ। माँ ! क्या उस समय तुम्हारा हृदय आनन्द-विभोर न हो उठेगा, जब तुम अपने पुत्र को, जिसे तुमने अपने प्राण-रूपी दुग्ध से सींचकर बड़ा किया है, प्रसन्न पाओगी ?"

"दिद्दा अपने कहे से कभी नहीं टली है। मैंने एक बार कह दिया कि तुम्हें भविष्य में उस तुच्छ वस्तु की कल्पना तक न करनी होगी, जिसे तुम सदा के लिए अपनाना चाहते हो।"—उत्तेजित होकर दिद्दा ने कहा।

और तब ही द्वारपाल ने कमरे में प्रवेश किया। उसने नत-मस्तक होकर राजमाता को प्रधान मन्त्री के आने की सूचना दी।

"आने दो," दिद्दा का स्वर गम्भीर था। प्रधान मन्त्री भीतर आया। दिद्दा ने उसके आने का कारण पूछा।

"राजमाता ने बन्दी क्षेमगुप्त को यहाँ ले आने का आदेश दिया था। बन्दी बाहर खड़ा है।"—प्रधान मन्त्री ने नतमस्तक होकर अत्यन्त नम्र भाव से कहा

"उसे भीतर ले आओ। विद्रोही को जितनी जल्दी हो सके, दण्ड देकर विद्रोह को शान्त कर देना चाहिए।" क्षेमगुप्त को अन्दर ले आया गया। दिद्दा उसको देखते ही तृषित सिंहनी की भाँति गरज पड़ी, "पापी ! दुष्ट ! हत्यारे ! तुम्हारी इतनी

हिम्मत कि कश्मीर में विद्रोह की आग जलाते फिरो ?"

क्षेमगुप्त ने दिद्दा की फटकार सुनी। उसका मुँह अपमान से लाल हो उठा। उसने विद्रोह भरे स्वर से कहा, "राजमाता ! हमने मनुष्य-योनि में जन्म लिया है। हम संसार में मनुष्यों की तरह कर्म करने आये हैं। मनुष्य कुत्ते की तरह चौराहे पर अपनी जान नहीं दे सकता। वह आदरपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए ही रचा गया है। हम एक तो परिश्रम और क्षुधा की भट्टी में जल-जल कर प्राण दें और दूसरे अपमान भी सहें। हम से अब बेगार नहीं ली जा सकेगी। सृष्टिकर्त्ता ने हमें इसलिए जन्म नहीं दिया कि हम अपने जीवन को व्यर्थ गँवा बैठें।"

"हाँ, यही मेरा आदेश है। तुम्हें अभी अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। इसकी कोई चिन्ता मत करो।"--रक्तवर्ण नेत्रों से निहारकर दिद्दा ने कहा।

"आपको अधिकार है।"--विद्रोह एवं क्रान्ति के उद्धत कीटाणु क्षेमगुप्त के मस्तिष्क में पूर्ण रूप से प्रवेश कर चुके थे। वह सारे संसार से युद्ध करने को उद्यत था।

"मन्त्री !"--गर्जन हुई।

"राजमाता !"

"घातकों से कह दो कि विद्रोही की गरदन--नहीं, नहीं; उन्हें आदेश दो कि श्रीनगर के विजय चौक में खुली सड़क पर विद्रोही के जीवित शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायँ। अभी जाओ।"--आदेश दिया गया।

प्रधान मन्त्री बन्दी को लेकर चला गया और दिद्दा चिन्ता-

सागर में डूब गई। कुछ समय मौन रहकर उसने अभिमन्यु की ओर देखकर उपेक्षा-भाव से कहा, "देखा तुमने ? जो करती हूँ, तुम्हारे हित के लिए ही। अपने पुत्र के अहित की बात क्या कोई माता सोच सकती है ?"

यह अनुभव कर कि दिद्दा के मन में उनके प्रति कुछ कोमल भाव उत्पन्न हुए हैं, अभिमन्यु ने मधुर प्रतिवाद के साथ कहा, "माँ ! सच्चा प्रेम हृदय के समस्त सद्भावों का उद्गारहीन, शान्त और स्थिर समावेश है। प्रणय में श्रद्धा और वात्सल्य, अनुराग और विराग, उपकार और अनुग्रह सभी एकत्र समिश्रित होते हैं। आज तक मैं उस सच्चे प्रेम से वंचित रहा हूँ। प्रेम का बन्धन ही जीवन का सर्वस्व है, माँ !"

दिद्दा सोच में पड़ी हुई थी। अपने दिल में न मालूम वह किस चक्रव्यूह की रचना कर रही थी। अपने शत्रुओं के दमन के क्या उपाय सोच रही थी। अभिमन्यु के शब्द उसके कानों में पड़े, वह कुछ सचेत हुई। "मैं ऐसा कभी नहीं करने दूँगी। आखिर तुम्हें क्या रोग लगा है ? दिन-रात उस चुड़ैल के स्वप्न आते रहते हैं तुम्हें। मैंने सौ बार कह दिया कि अब उस नर्तकी के पाँव महल की ड्योढ़ी के अन्दर न पड़ेंगे।"

अभिमन्यु निराश तो हुए किन्तु उनकी अतृप्त आत्मा, जो प्रणय-रूपी भोजन पाने के लिए चीत्कार कर रही थी, उन्हें बार-बार प्रयास करने को अग्रसर कर रही थी। व्यग्र होकर उन्होंने कहा, "माँ, जीवन का सार केवल प्रत्यक्ष में है। हमारी समस्त दैहिक तथा मानसिक शक्ति का विकास केवल यौवन है.....।"

"चुप रहो दुष्ट ! नहीं तो बाद में पश्चात्ताप करना पड़ेगा।"

"मैं प्राण दे दूँगा, माँ !"—अनुताप से कम्पित स्वर में अभिमन्यु ने कहा।

"दिद्दा ने कभी किसी के प्राणों का मूल्य नहीं जाना है। वह सहस्रों प्राणियों को अपनी मुस्कराहट की भेंट चढ़ा चुकी है।"

फिर दोनों चुप हुए।

× × ×

सायंकाल !—अंशुमाली का प्रकाश-पुंज व्योम में छाई हुई लालिमा को अपने रजत प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ क्षितिज की सीमा का अतिक्रमण कर रहा था। सुनहरी रश्मियाँ कश्मीरी केसर तथा कमल के पुष्पों के प्राणों में मादकता का संचार कर रही थीं। प्रकृति पावस के शीतल, सुरभियुक्त, उल्लासमय समीर-सागर में विमग्न हो रही थी। राजोद्यान में नव-विकसित पुष्प, किरणों के हार पहने मुस्करा रहे थे, देवदारू के सुकोमल नव-पल्लवों में कोकिल अपनी मधुर हृदयस्पर्शी तान अलाप रही थी; और महल के एक सुनसान कमरे में शैया पर लेटे हुए अभिमन्यु कराह रहे थे।

"ख़ून ! नन्दी, ख़ून !" रक्त का एक घूँट अभिमन्यु के मूँह से छूट चला। पास में बैठा उसका पुत्र नन्दीगुप्त, चौदह वर्ष का चतुर बालक, अपने पिता की यह दशा देखकर व्याकुल हो उठा। उसने अपने पिता के मस्तक पर हाथ रखकर अपने रूमाल से उनके मुँह को पोंछ डाला। फिर कोमल शब्दों में उसने कहा,

"पिता जी, आज एक सप्ताह से आप अस्वस्थ अवस्था में यहाँ पड़े हुए हैं। आप मुझे राजवैद्य को बुलाने से क्यों रोकते हैं? आखिर में आपकी इस दशा को कब तक देखता रहूँ।"

"न जाओ।"—अभिमन्यु के मुँह से एक श्वास छूट चला।

"आखिर कब तक न जाऊँ! राजमाता दिद्दा दो महीने हुए यहाँ आई थी। तब से इस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती हैं। क्या वह वास्तव में आपकी माँ हैं? फिर उनका कलेजा आपकी इस दशा को देखकर क्यों फट नहीं जाता, पिता जी!"

अभिमन्यु इतनी शक्ति कहाँ से लाये, जो वे नन्दीगुप्त की भोली बातों का एक-एक करके उत्तर दे सकें। वह कुछ क्षण चुप रहकर धीमी आवाज़ में कहने लगे, "दिद्दा मेरी माँ है, किन्तु सृष्टिकर्ता ने उसे दिल दिया ही नहीं है।" श्वास-गति कुछ तीव्र हो गई। "उसने समस्त कश्मीर-मण्डल की आकृति बदल डाली है। कोई प्राणी उससे सन्तुष्ट नहीं है।" कहकर वह चुप हो गये। नन्दीगुप्त ने फिर बालकों की अज्ञानता के साथ पूछा, "वह यदि प्रजा को सन्तुष्ट न कर सकीं, तो आपने उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा क्यों न की? महाराज तो आप हैं। अधिकार आपके हाथों में है।"

अभिमन्यु के अन्तस्थल में एक प्रकाश उत्पन्न हुआ—ऐसा प्रकाश जो जीवन की अन्तिम घड़ियों में उत्पन्न होता है, जिसमें मन की सारी निर्बलताएँ, सारी कालिमाएँ और सारी विषमताएँ यथार्थ रूप में दृष्टिगोचर होती हैं, और जो अन्त में प्राणी को पश्चात्ताप की ओर ले जाती हैं। नन्दीगुप्त के साधारण-से प्रश्न

का उत्तर वह क्या दे सकते थे ? उनके होंठ फड़फड़ाए, "मेरी ही भूल थी नन्दी। अब वह दिन दूर नहीं, जब निर्दोषों के रक्त से सींचा हुआ यह राज-मोह तरु कटकर·····!"

शुष्क अधरों से रक्त की धार बह चली। अभिमन्यु के कण्ठ में काँटे-से पड़ गये थे। नन्दीगुप्त की निर्दोष आँखों से आँसुओं की दो बूँदें ढुलककर उसके रक्तहीन गालों पर गिर पड़ीं। बरबस ही उसकी आँखों से आँसू की झड़ी लग गई। उसने पिता के होंठ अपने रूमाल से पोंछते हुए उनकी इच्छा का विरोध करते हुए कहा, "अब यह मुझ से देखा नहीं जा सकता। पुत्र की आँखों के सामने पिता घुल-घुलकर अपने प्राण दे और वह नीच उस वीभत्स दृश्य को देखता रहे। अब आप मुझे मत रोकिए। मैं दिद्दा से इसका बदला अवश्य लूँगा। अभी राजवैद्य को बुलाकर आपके प्राण बचाऊँगा।"

"नन्दी !" अभिमन्यु ने नन्दी को द्वार की ओर जाते हुए रोक लिया। "ऐसा कभी भूलकर भी मत करना। दिद्दा के सामने तुम्हारी क्या हस्ती है ? राजवैद्य की बात ठीक कहते हो, नन्दी ! किन्तु मेरी दवा चित्रलेखा के पास है।"

"मैं उसे अभी बुलाकर लाता हूँ।" नन्दीगुप्त झपकी में द्वार से बाहर हो गया। अभिमन्यु की आँख लगी। उन्होंने देखा. मेघ के दुर्लंघ्य कारागार में बैठकर कोई रूपसी रो रही है और उसकी अश्रुधारा में सारा संसार आप्लावित होना चाहता है। बहुत देर तक वह उस अरूप सुन्दरी की वेदना के उद्‌गारों को सुनते रहे। तब उनकी आँखें खुलीं। वह छत की ओर एकटक

देखने लगे, मानो उनकी दृष्टि अनन्त के पार पहुँच जाना चाहती हो। सहसा नन्दीगुप्त ने चित्रलेखा के साथ कमरे में प्रवेश किया।

चित्रलेखा ने अभिमन्यु के सिर पर हाथ रखकर व्यथित कण्ठ से कहा, "नाथ! मुझे किसकी शरण छोड़ जाओगे?"

अभिमन्यु के नेत्र खुले। अकथनीय शोक, असहनीय वेदना, अपार तृष्णा और प्रेम था उनमें।

"कैसी तबीयत है?"

"जी रह-रह कर डूबा जाता है। कोई दुःख नहीं, कोई पीड़ा नहीं। जान पड़ता है, सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया है। और मेरे इस दीपक में तेल नहीं रहा।"

चित्रलेखा के मुख पर पहले की भाँति वह प्रफुल्लता न थी, वह अरुण आभा न थी। कपोलों और अधरों की लाली और स्मित की रेखाओं का स्थान विशाल, करुण और अलौकिक धैर्य और चिन्ता के पीलेपन ने ले लिया था। उस चिर-परिचित स्थान में उसे एक विचित्र शंका का आभास हो रहा था।

अभिमन्यु ने अपना दाहिना हाथ फैलाकर कहा, "तुम आ गईं, चित्रलेखा! बहुत अच्छा किया। न मालूम कितने क्षणों के पश्चात् यह टिमटिमाती हुई दीप-शिखा सदा के लिए बुझ जायगी।"

"ऐसा न कहिये, नाथ!"—ग्लानि-वेदना से व्याथत स्वर में चित्रलेखा ने कहा। उसने अभिमन्यु के हाथों को अपने हाथों में ले लिया और कुछ क्षण के लिए सर्वथा मौन हो गई। नेत्र

निमीलित हो गये। अभिमन्यु मुस्कराया; वह विलक्षण मुस्कराहट, जिसमें समस्त जीवन की आशाओं और अभिलाषाओं का प्रतिवाद होता है। फिर निर्मम भाव से बोले, "हाँ, सम्भवतः!"

"आपके दुःख और क्लेश का कारण केवल मैं हूँ। नाथ! मुझे क्षमा करना। मैंने आपको अपने प्रेम-पाश में बाँधकर आपके साथ घोर अत्याचार किया। उसकी व्यथा से आज मेरा अन्तःकरण पीड़ित हो रहा है। मैंने आपके सुखी जीवन का सर्वनाश कर दिया। ईश्वर मुझे इस घोर अपराध के लिए कठिन से कठिन दण्ड देगा।" चाँद पर उसकी दृष्टि पड़ी, और दर्द-भरी स्मृतियों का स्रोत बह निकला। उसका अंचल और नयन पानी से भींग गये। सिर लटक गया, जैसे रुदन का आनन्द ले रहा था।

"चित्रलेखा, ऐसा मत कहो। मैंने अपने दुखी जीवन में माधुर्य अथवा स्नेह केवल अभिसार की उन घड़ियों में पाया।"—भारी कण्ठ से अभिमन्यु ने कहा, "तुम देवी हो, नव-पुष्प-सी पवित्र, कौमुदी-सी उज्ज्वल और हिमालय पवन-सी अकलंक। तू ही मेरे प्राणों का एकमात्र आधार थी। मेरी नाड़ियों से रक्त बनकर केवल तू ही दौड़ा करती थी।" उन्हें अभिसार की वह स्मृतियाँ याद आईं, जब वह अपनी उन्मत्त उसाँसों, अपनी मादक चितवनों में, मानो अपने प्राण निकालकर चित्रलेखा के चरणों पर रख देते थे। वे अब एक वियोगी पक्षी की भाँति अपने छोटे-से नीड़ में एकान्त जीवन व्यतीत कर रहे थे। "मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया और तुमने विरह-वेदना को सहकर अपने सतीत्व और हृदय की उज्ज्वलता का परिचय दिया। मैं पापी हूँ,

चित्रलेखा ! मैं तुम्हारे प्रेम का पात्र न बन सका।" श्वास-गति अत्यन्त तीव्र हो गई। सारा शरीर थरथर काँपने लगा।

नन्दीगुप्त की धमनियों में बरसाती नालों के समान रक्त दौड़ रहा था। बदला चुकाने की भावना उसके हृदय में घर कर चुकी थी। उसने पिता की गोद में सिर डालकर रुँधे हुए कण्ठ से कहा, "पिता जी !" नेत्र छल-छल करने लगे उसके। उसकी हृदय में चुभ जाने वाली आँखें मौन भाषा में, जैसे पिता को पुकार रही थीं। उसका करुण क्रन्दन सुनकर अभिमन्यु की सारी संज्ञा सिहर उठी। उसके बचपन की स्मृति पुत्र-स्नेह से सजीव होकर उसे रुलाने लगी। व्यथा में डूबे हुए अन्तिम शब्द उसके मुँह से निकले—"चित्रलेखा ! मेरे वक्षःस्थल पर अपना सिर रख दो।" चित्रलेखा ने उसके वक्षःस्थल पर अपना सिर रख दिया और अन्तिम प्रेमालिंगन के आनन्द में विह्वल हो उठी, जिसमें उसने उस तृप्ति का अनुभव किया, जो उसके लिए अभूत-पूर्व थी।

प्रकृति के मधुर संगीत की भाँति कौमुदी छिटकी हुई थी। अनुपम निशाकर बादलों से आँख-मिचौनी खेल रहा था। व्योम में मेघ के कुछ शिशुखण्ड, सुरभित मारुत के सुकुमार पंखों पर धीरे-धीरे बह रहे थे। चारों ओर सन्नाटा था। समस्त संसार निद्रा की शान्तिदायिनी गोद में विश्राम कर रहा था। हिमालय पर्वत की गगनचुम्बी श्रेणियाँ अभिलाषाओं की समाधियाँ-सी प्रतीत होती थीं और चील, पड़तल, देवदारु वनों के समूह मरघट से उठते हुए धुएँ के बादलों के समान दिखाई पड़ते थे।

महाराज अभिमन्यु की पलकें खुलकर फिर बन्द हो गईं। एक हिचकी आई और वह महानिद्रा की गोद में सो गये।

रंगीन बादल थे। पर्वतीय संध्या अपना रंग जमा रही थी, पवन तीव्र था। सूर्य आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ पर्वत-माला के पीछे छिप जाने का प्रयत्न कर रहा था। कश्मीर का रसिक पतझड़ सुगन्ध, प्रमोद और जीवन की विभूति लुटा रहा था। देवदारू के वृक्षों पर बैठी हुई कोकिलें आशाओं को जगाती फिर रही थीं। कुछ ही क्षण बीत जाने पर संध्या के रक्त-रंजित मर्म-स्थल में भास्कर यों मुँह छिपाये बैठ गया, जैसे शोक-मण्डित लोचन में अश्रु-बिन्दु। तारागण भी निद्रा का त्याग करते हुए, एक-एक करके अपनी उज्ज्वल आँखें खोलने लगे।

× × ×

श्रीनगर के समीप ही, एक खेत से निकलकर दो ग्रामीण, जग्गू और रामू—अपने कन्धों पर हल रखे, बैलों की जोड़ियों को हाँकते हुए और उनकी घंटियों में अपने मधुर ग्राम्य-गीतों का आलाप मिलाते हुए, पथरीली पगडंडी पर चले जा रहे थे। सहसा जग्गू ने कहा, "जी भरकर हँस ले, गा ले, रामू! क्या भरोसा है इस नश्वर शरीर का।"

"क्यों रे, आज कविता कैसे छूट रही है तेरे होठों से और, ऊपर से निराशा का कारण?"

"हाँ रे, और क्या! अभिमन्यु न रहे, न रहे राजकुमार नन्दीगुप्त!"—दीर्घ निःश्वास लिया जग्गू ने।

"क्यों ?"—रामू के विस्मय-भरे नेत्रों ने पूछा।

"हाँ, रामू ! सुना है, दिद्दा ने राजकुमार नन्दीगुप्त को भी मरवा डाला है।"

"क्या कहा·····!!"—स्तम्भित होकर रामू ने पूछा।

"जो कहा, ठीक ही है !"

४

रोटी का सवाल

अतामुहम्मदखां ने रुकी साँस को छोड़कर कहा, "हमने शहंशाह अकबर से स्वयं कश्मीर आने की प्रार्थना की थी। इस रमणीक प्रदेश के सौन्दर्य की चर्चा हमने बढ़ा-चढ़ा कर उनसे की थी। किन्तु·····।"

"हाँ, जहांपनाह ! शहंशाह के बिगड़े हुए स्वास्थ्य की कश्मीर-भ्रमण ही एकमात्र औषधि थी। वे यहाँ प्रकृति की सुषमा को निरखकर आनन्दित हो जाते। स्वच्छ सुगन्धित बयार के सेवन से उनका स्वास्थ्य बनता। किन्तु उन्होंने आपका जाना ही उचित समझा।"—पास बैठे एक प्रवीण शिल्पकार ने कहा।

सन्ध्या का समय था। तेजहीन सूर्य प्राची का सुवर्णरंजन कर रहा था। पक्षी कोमल कलरव करते हुए अपने-अपने बसेरों की ओर लौटते सान्ध्य-वेला की सूचना दे रहे थे।

अतामुहम्मदखां ने थोड़ी-सी वारुणी ली। फिर हुक्के का कश खींचते हुए वे विचारमग्न हो गये। कुछ देर सोचकर बोले, "नहीं, शहंशाह को यहाँ शान्ति किस तरह से मिल सकती थी? अकाल से नगरवासी अति पीड़ित हैं। क्या उन्हें कराहते देख शहंशाह को चैन पड़ता? नहीं, कदाचित् नहीं। शहंशाह

ने भला किया कि स्वयं यहाँ न आये। फिर भी वह यहाँ के समाचार सुनने के लिए व्याकुल होंगे।"

"ठीक है, जहांपनाह!"—गुलशाह ने सिर हिलाते हुए उनका अनुमोदन किया। अतामुहम्मदखां ने हुक्का गुड़गुड़ाया।

"इस वर्ष पैदावार बहुत थोड़ी हुई है। दुर्भिक्ष ने जनता को आ घेरा है। नगरवासी इतने धनाढ्य नहीं कि महँगा अनाज खरीद सकें। परिणामस्वरूप लोग भूखों मर रहे हैं। —भूखों! अल्लाह!" उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लिया। अकाल का भयावना चित्र उनकी आँखों के सामने छा गया। भूख·····वी··भत्स रोग·····रोग·····मृत्यु—"अल्लाह तोबा!!"—उनकी देह में कँपकँपी-सी जान पड़ी, जो उन्हें चिन्तित छोड़ गई।

शहंशाह ने आज्ञा दी है कि जब तक दिल्ली से सस्ता अनाज न पहुँच जाय, लोगों को हारी पर्वत की चोटी पर एक दुर्ग के बनवाने में लगा देना चाहिए। उन्हें अच्छी मज़दूरी मिलनी चाहिए, ताकि दुर्भिक्ष के दिनों में वे अपनी उदर-पूर्ति कर सकें। गुलशाह, सवेरे ही राज-कर्मचारियों द्वारा श्रीनगर में इसका ढिंढोरा पिटवा देना चाहिए।"

"बेहतर आलम पनाह!"—गुलशाह ने सिर झुकाकर आज्ञा स्वीकार की।

"हाँ, एक दुर्ग की यहाँ अत्यन्त आवश्यकता ह। उत्तर-पश्चिमी सीमा से आक्रमणकारी हमें फिर धमकी दे रहे हैं। यह भी सम्भव है कि वे कभी आक्रमण कर बैठें और उस समय हमें

अपनी रक्षा का मार्ग ही न सूझे। गुलशाह अपना क़िला मज़बूत बनवाता होगा, जिसकी दीवारें तोपों के गोलों की वर्षा के आगे अडिग खड़ी रहें और जिसके देखनेमात्र से ही किसी परदेशी को यह ज्ञात हो सके कि वह शक्तिशाली सम्राट् अकबर का बनवाया हुआ है।"—गर्वपूर्ण मुद्रा से अतामुहम्मदखां ने कहा। उनकी नाड़ियों में रक्त की गति तीव्र हो उठी। उनका पठानी चेहरा रुधिर की गति तीव्र होने से लाल हो गया। कुछ देर इसी अवस्था में रहकर उन्होंने फिर हुक्के का कश खींचा और माथे पर हाथ फेरने लगे।

सन्ध्या का साम्राज्य बढ़ रहा था। पक्षी अपने बसेरों में सान्ध्य-गीत गा रहे थे। एक ख़िदमतगार हाथ में एक जलता हुआ एक दीपक लेकर भीतर आया। दीपक को शमादान में रखकर वह वापस चला गया।

सारा कमरा दीपक के प्रकाश से जगमगा उठा। ईरानी ग़लीचे, अखरोट की लकड़ी के बने हुए पलँग, पेपरमाशी के बने हुए खिलौने—सभी मनोहर लग रहे थे उस दीपक के कोमल प्रकाश में। मन्द-मन्द पवन के झकोरों से हिलती हुई वह दीप-शिखा अतामुहम्मदखां की दीवार पर पड़ी हुई परछाईं को चुपके से निहार रही थी।

कुछ देर सोचकर वह धीरे-धीरे बोले—"हाँ, यह ठीक है कि उस पहाड़ी की नुकीली चोटी को समतल बनाना और वहाँ पत्थर पहुँचाना बड़ा कठिन काम है। परन्तु भूख से पीड़ित नगर-वासी इस.....!" उन्होंने कुछ खाँसा। "हाँ, दुर्ग

के बीच एक मन्दिर और एक मस्जिद भी बनवानी होगी, जो सैनिकों की पूजा-निमाज के काम आ सकें।"

"जहांपनाह! मैं अपनी ओर से भरसक प्रयत्न करूँगा। आज तक जो दुर्ग मैंने बनवाये हैं, सम्राट् अकबर ने सबकी प्रशंसा की है।"

"हाँ, हाँ, हमें मालूम है। आप वास्तव में शिल्पकला में प्रवीण हैं। एक और बात है। आपको हारी पर्वत के गिर्द एक ऊँची, चौड़ी और मज़बूत फसील बनवानी होगी, ताकि ख़तरे के समय सारे नगरवासी पहाड़ी पर आश्रय ले सकें और शत्रु का अच्छी तरह मुकाबला कर सकें। फ़सील की मोटाई इतनी हो कि चार घुड़सवार इकट्ठे बे-रोक उस पर दौड़ सकें। शहंशाह ने हम से कहा है कि नगरवासियों को अधिक से अधिक मज़दूरी दी जाय।" वे हिलकोरे खाती दीप-शिखा की ओर देखने लगे।

"बेहतर आलमपनाह!"—गुलशाह ने सिर नवाकर कहा।

वह पतझड़ की शाम थी। निमल कौमुदी चारों ओर फैली हुई थी। प्रकृति सन्नाटे में डूबी जा रही थी। खिड़की में से आई हुई विमल चन्द्र-ज्योत्स्ना में वह दोनों चित्र की तरह दिखाई दे रहे थे। दोनों चुप थे, मौन, विचारमग्न।

सहसा निःशब्दता को बेधती हुई एक आवाज़ सुनाई दी। गुलशाह ने खड़े होकर खिड़की से बाहर झाँका। धीरे-धीरे वह आवाज़ निकट आती गई और स्पष्ट होती गई, "शहंशाह

की दुहाई है ! आलमपनाह की दुहाई है ! ···भूख ! रोटी ! ! ··· रोटी·····! ! !"—कोलाहल उमड़ रहा था। पुकार थी वह असंख्य जनों की—जीवन-पुकार।

गुलशाह ने कोमल चाँदनी में भूख से पागल भीड़ को अपनी ओर आते देखा। वह थर-थर काँपने लगा। बच्चों का रोदन, अबलाओं का क्रन्दन और वृद्धों की पुकार किसी पाषाण को भी पिघला देने के लिए पर्याप्त थी।

"क्या है यह शोर ?"—कश्मीर के आमिल अतामुहम्मदखां ने पूछा।

"जहांपनाह ! ! अकाल से पीड़ित नगरवासियों की पुकार।"—गुलशाह ने अन्दर आते हुए कहा।

"पुकार ! !"

"जहांपनाह ! !"

"भूख ! ! !"

× × ×

"आओ बेटा, सरोवर के किनार कुछ फल चुनें।"—हमीदा ने लड़खड़ाती वाणी में अपने नन्हे बालक से कहा। चीथड़ों में लिपटा हुआ और पसीने से लथपथ वह निर्बल बालक, जिसकी अस्थियाँ गिनी जा सकती थीं, गिरता-उठता अपनी माँ के पीछे हो लिया। हमीदा का कृश, उजड़ा हुआ वेश, बिखरे हुए केश, फटे होंठ, शुष्क जिह्वा, अन्दर धँसी हुई आँखें, उभरी हुई हड्डियाँ, माथे पर उभरी नीली-नीली नाड़ियाँ, उसके मुँह की एक-एक झुर्री आदि अकाल का भयानक चित्र उपस्थित कर रहे थे।

वह हर बार उठने में हाँप जाती। बैठने पर उठना दूभर हो जाता और खड़े होने पर उसके पैर काँपने लगते, सिर में चक्कर आने लगता। बड़ी दिक़्क़त होती उसे झुककर खड़े होने में। लगता था कि वह सामने की ओर लुढ़क जायगी।

दोनों ही डल सरोवर के तीर पर स्थित एक फलोद्यान की ओर पतझड़ की मध्याह्न की चिलचिलाती धूप में जीवनोपाय ढूँढ़ने चल पड़े। उद्यान के तरुवर लाल-सुनहरा वेश धारण किये हुए थे। मुर्झाये हुए पत्ते पवन के स्पर्श से सिरसिराकर नीचे आ रहे थे, मानो टहनियों से बिछड़ जाने पर और उन दो प्राणियों के असह्य दुःख को देखकर विलाप कर रहे हों। टहनियाँ भी सूख गई थीं। उन पर सुन्दर पक्षी मधुर कलरव नहीं कर रहे थे। सुनने में आती थी कभी किसी मुर्झाई हुई टहनी पर बैठे हुए काग की काँव काँव। शुष्क नग्न टहनियों पर फल कहीं भी दृष्टिगोचर न हो रहे थे। हाँ, कहीं-कहीं कोई सूखा-सड़ा, पक्षियों की चोंचों से छिदा हुआ फल किसी ऊँची शाखा पर दीख पड़ता था। हमीदा तृष्णा-भरी आँखों से उन फलों की ओर देखती।

नन्हा बालक तट पर पानी से खेलने लगा। कलकल करता डल-सरोवर गिरि-श्रेणी से घिरा हुआ कनक तार की भाँति चमक रहा था। तीक्ष्ण रवि-रश्मियों के स्पर्श से जल-प्रपात से उठते असंख्य नीहारों में अनेक रंग रह-रह कर दमक उठते। सरोवर की तरंगें अशान्त थीं। कमल-पुष्प तथा पत्र मुर्झा रहे थे। चप्पुओं से मथित उस गँदले जल पर असंख्य नौकाएँ तैर रही

थीं। उनमें थे वही क्षुधा-पीड़ित, पिशाच-सदृश असंख्य जन, ढूँढ़ रहे थे अपनी उदराग्नि को शान्त करने के लिए कमल-फल सिंघाड़े, मीन और पक्षी।

क्षुधा-पीड़ित बालक चैन से न खेल सका। झट अपनी माता के पास आया। हमीदा तीन दुर्गन्धयुक्त फल तोड़ लाई। बालक एक फल छीनकर बड़े स्वाद से खाने लगा।

"इतने ही फल थे माँ ?"—उसने खाते हुए पूछा।

"हाँ बेटा, इतने ही थे, इतने ही !" हमीदा की आँखें आँसुओं से आर्द्र हो उठीं। उसे अपने हृदय में मातृ-स्नेह की पीड़ा का अनुभव हुआ। उसने बालक को गले लगाया—पीड़ा को शान्त करने के लिए। वह रोती, गला फाड़कर रोती, किन्तु उसकी आँखों का पानी भी सूख गया था।

"और क्या खाएँगे माँ ?"—बालक ने उंगलियाँ चाटते हुए पूछा।

"तुम्हारे बापू तुम्हारे लिए कुछ तो लाते ही होंगे।"—हमीदा ने सिसकते हुए कहा।

इतने में हमीदा का पति रहीम भी वहाँ आ पहुँचा। युवक रहीम की कमर कुछ झुकी हुई थी। पीला मुँह, क्षीण देह, पसलियों की हड्डियाँ निकल आई थीं। चलते-चलते वह बार-बार अपनी गर्दन उठा देता। डरावनी सूरत थी उसकी, मानो वह क़ब्र से खोदकर लाया गया हो। वह प्रसन्न था। वह मन ही मन मुस्करा रहा था, किन्तु उसे मुँह पर लाने के प्रयास में असफल

हो रहा था। उसके बायें हाथ में थी एक चिड़िया मृत, रुधिर-रंजित।

दाहिने हाथ की तर्जनी टेढ़ी कर भाल प्रदेश से पसीना पोंछते हुए रहीम ने शिथिलता-सूचक हर्ष भरे स्वर में कहा, "हमीदा, कल मज़दूरी मिलेगी! शहनशाह अकबर को क़िला बनवाना है। हमें तीन पैसे रोज़ मज़दूरी मिला करेगी और सरकार की ओर से सस्ता अनाज भी मिला करेगा। काम कल सवेरे से शुरू होगा।"

"सच!"

"हाँ हमीदा, सच कहता हूँ, बिल्कुल सच!"

नन्हा बालक रहीम की टाँगों से लिपट गया। "फिर हमें रोटी मिलेगी बापू?"

"हाँ बेटा, रोटी मिलेगी और ज़रूर मिलेगी!"—उसके मुँह पर मुस्कान थी।

उसके नेत्र झरने लगे।

हारी पर्वत के दामन मलखाह में एक लाख भूखे-नंगे नगर-वासी मज़दूरी करने के लिए उद्यत हैं। पूर्व दिशा में दिनमणि की सुनहरी किरणें क्षितिज-पट पर सुरम्य प्रातःकाल का चित्र अंकित कर रही हैं। स्वर्णांकित छोरों से शृंगारित मेघटूक व्योम में इधर से उधर बह रहे हैं। गिरिराज से आता शीतल समीर नगरवासियों के मुर्झाये हुए चेहरों को थपकी दे रहा है। एक ऊँची शिला पर चढ़ गुलशाह हारी पर्वत की ओर संकेत कर उन निर्बल मज़दूरों का उत्साहवर्द्धन कर रहा है।

"कौनसा वीर इस पहाड़ी की नुकीली चोटी में छिद्र कर उसमें बारूद भर देगा ताकि हम नीचे से तोप द्वारा उसमें आग लगा सकें ? हम बारूद की शक्ति से ही इस शिखर को तोड़-फोड़कर समतल बनाना चाहते हैं। तब ही दुर्ग का निर्माण हो सकता है। शाबाश, वीरो, आगे बढ़ो !"

जन-समूह मौन था, अडिग।

"आलमपनाह शहनशाह अकबर की आज्ञा है कि जो वीर इस कार्य में सफलता प्राप्त करेगा उसे जागीर दी जायेगी। शहनशाह उसे पुरस्कृत करेंगे और ऊँची पदवी देंगे।"

उस असंख्य जन-समूह में से किसी एक को भी यह कार्य करने की हिम्मत न पड़ी। वे एक दूसरे के मुँह की ओर बार-बार ताक कर उस पहाड़ी को देखते।

रहीम भी भीड़ में खड़ा था। उसने भी अपने शिथिल नेत्रों से हारी पर्वत की ओर देखा। जब गुलशाह चुप हुआ, तब रहीम ने मुँह नीचा कर लिया। उसकी दृष्टि अपने फटे-मैले चीथड़ों तक गई। लम्बे-लम्बे बाल, दुबला-पतला शरीर, जिसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। उसकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चल-कर उसके दुर्बल कंकाल को कम्पित किये दे रही थी। चारों ओर निस्तब्धता थी --हाँ, हड्डियों के ढांचे में छिपा हुआ उसका दुःखी दिल--निराश मन उसका--कह रहा था उसके कानों में कुछ धीमे स्वरों में।

उसने ऊपर हारी पर्वत की ओर देखा, और सिर नीचे झुकाकर अपनी टाँगों की ओर देखने लगा। असमर्थ !—

गूँज रहा था उसके कानों में यह शब्द। उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया। उसी समय उसकी आँखों के सामने आया---नन्हे का रोदन, हमीदा की व्याकुलता। कर्तव्य से विमुखता ?---प्रतिध्वनि हुई उसके कानों में। नहीं·····नहीं·····।

"शाबाश, वीरो !"---गुलशाह बार-बार पुकार रहा था।

इतने में रहीम भीड़ में राह बनाता गुलशाह की ओर चल पड़ा। उसके साथ दो और व्यक्ति उस असंख्य जन-समूह में से निकलकर गुलशाह के सामने आ खड़े हुए।

रहीम के हाथ में अस्त्र देते हुए गुलशाह ने कहा, "शाबाश, वीर ! तुम पहले जाओ। ईश्वर न करे जब तुम असफल रहोगे, फिर उन दो की बारी आयेगी। अल्लाह तुम्हारे साथ है। वही तुम्हारी सहायता करेगा।"

रहीम ने वह अस्त्र कन्धे पर उठाया---बहुत भारी लगा वह उसे---और डगमगाता हुआ वह चल पड़ा। जन-समूह की दृष्टि उसकी पीठ पर टिकी हुई थी। पत्थरों को पकड़ता, शुष्क घास को खींचता, काँटेदार झाड़ियों से लिपटता और अपनी टूटी काया को घसीटता हुआ वह ऊपर चढ़ता गया। प्रत्येक पग पर वह सिर उठाकर चोटी की ओर देख लेता। कभी-कभी उसकी नज़र उसके रक्त से लथपथ हाथों तक भी जाती। कितना लाल था उसका रुधिर, कितना प्यारा ! लगता था जैसे उस रुधिर के साथ ही बह रहा था उसका जीवन-द्रव्य, उसका क्षुब्ध, दुःखी प्राण। लम्बी साँस लेकर वह बार-बार ऊपर देख लेता। अपने लक्ष्य की ओर---पसीने से लथपथ, श्रम से शिथिल और

भूख से व्याकुल ।

असंख्य जन-समूह उसे उत्साहित कर रहा था । किन्तु वह कोलाहल उसके कानों में रोना-सा लग रहा था । उसके नन्हे बेटे की याद ही उसका साहस बढ़ाती, उसके दुःखी दिल को दिलासा देती ।

पग-पग पर उसकी शिथिलता बढ़ती गई । उसका सिर चकराने लगा । उसकी जीभ शुष्क हो गई । देह में कँपकँपी जान पड़ी । बड़े ज़ोर से साँस ले रहा था वह । उसने मुड़कर नीचे की ओर देखा, अहा ! कितना ऊपर चढ़ आया था वह ! नीचे गुलशाह लाल झण्डी से संकेत कर रहा था—ऊपर, कुछ और ऊपर । रहीम का साहस बढ़ा । बुझने से पहले ज्योति एक बार तीव्र हो उठी । उसके शिथिल अंगों में विचित्र स्फूर्ति दौड़ गई । कुछ क्षण ठहरकर उसने फिर चढ़ना आरम्भ किया । किन्तु दो-एक पग ही चढ़ा था कि उसकी ताक़त ने कोरा जवाब दे दिया । काया का जर्जर पिंजर कब तक सहन कर सकता था? उसने अपने शक्तिहीन हाथों से एक पत्थर को पकड़ा । उसकी आँखों के सामने मृत्यु का चित्रपट छा गया । उसने सोचा शायद वही उसके संकट का अन्त हो । वह ऐसा चकराया कि उसके शरीर को एक झटका-सा लगा । उसकी टाँगें बैठ गईं । उस पत्थर ने भी, जिसे वह पकड़े हुए था, उसे ठुकरा दिया ।

"अल्····लाह !"—रहीम के मुँह से डूबता हुआ शब्द निकला । वह नीचे लुढ़क रहा था—नुकीले शिलाखण्डों और चुभते काँटों के बीच, नीचे और नीचे ।

"नन्हे ! हमीदा····!"

परिश्रम तथा क्षुधा की भट्टी में जल-जलकर उसने अपने प्राणों की आहुति दी। असंख्य जन-समूह हाहाकार कर उठा।

सन्ध्या बीत चुकी थी। लालिमा अन्धकार में लीन हो चुकी थी। प्रकृति के उपकरण धीरे-धीरे अन्धकार में अपना मुँह छिपाने लगे। चन्द्रमा अभी तिमिर-पट के पीछे छिपा था। ताराओं का क्षीण प्रकाश अम्बर में विद्यमान था। अकाल से मरे हुए प्राणियों के शवों पर लड़ते शृगालों की किच-किच बराबर गूँज रही थी। उल्लू का भयानक स्वर दिशाओं को झकझोर जाता था।

हमीदा और उसका नन्हा बालक अपनी तृणाच्छादित तथा धूमरंजित कुटी के द्वार पर बैठे रहीम की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"बापू नहीं आये माँ !"—बालक ने अपनी माता की गोद में बैठते हुए कहा।

हमीदा ने उसका कपोल-चुम्बन करके कहा, "आते ही होंगे, बेटा !"

"आज हमें रोटी खानी है माँ !"—बालक प्रसन्न था।

× × ×

"आज तुम सभी घर जाकर हारी पर्वत के क़िले के शहीद रहीम के लिए दुआ करना !"—गुलशाह ऊँचे स्वर से मज़दूरों से कह रहा था, "उसकी विधवा की रोटी का प्रबन्ध करवाया जायगा और उसकी पुण्य स्मृति में हारी पर्वत की फसील के भीतर ही एक आलीशान मकबरा भी बनवाया जायेगा।"

५

घास का माया-जाल

कश्मीर की विशाल उपत्यकाओं की पीली-पीली सूखी हुई घास पतझड़ में टाँगों से लिपट जाती है, अश्लेष बन्धनों की तरह ठण्डी और निर्जीव-सी। नग्न धूमिल आकाश के नीचे पीली धरती पर दूर-दूर तक फैली हुई शुष्क घास के पवन में झूमने की सायँ-सायँ शरीर में एक विचित्र प्रकार की कँपकँपी-सी उत्पन्न कर देती है। एक अपार समुद्र की तरह तृणाच्छादित वसुन्धरा हरे आवरण के अभाव तथा फूस की प्राण-हीनता के कारण मानव-हृदय में शून्यता तथा एकाकीपन के भाव भर देती है।

श्यामल घास से ढके हुए विशाल खेत में एक भारतीय सैनिक कन्धों से उसके घनेपन को चीरकर और आँख बचाकर कुछ सोच रहा था। मेघ के एक विशाल खण्ड के पीछे छिपा हुआ दिनमणि पूर्व दिशा का सुवर्ण-रंजन कर रहा था। सैनिक ने उदय होते सूर्य को देखा और तब घास में अपने आपको छिपाने का अधिकाधिक प्रयत्न करने लगा। चारों ओर खड़ी ऊँची घास उसको तथा उसकी विचित्र वेशभूषा को छिपाने में पूर्ण रूप से सफल हो रही थी।

रायफल के सहारे खड़े होकर, तिरछी नज़र से धूमिल

आकाश को ताकते हुए, जाने कैसी गुप्त और निर्मम दृष्टि से सैनिक ने फिर दूर तक फैली हुई शुष्क घास को देखा। मानो शिथिल आँखों के द्वारा ही उसने अपने दुःखी जीवन को उस उपत्यका पर फैला दिया—निजी दीनता और याचना के साथ।

उसकी श्वास-गति तीव्र हो चली थी। हाथों से बार-बार लम्बी घास को अपनी राह से हटाने का प्रयत्न करते हुए वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। पीतल की टोपी को पेटी से कसकर बाँध रखने के कारण उसके सिर के लम्बे और बिखरे हुए बाल ओस से भीगे हुए उसके माथे और मलिन मुख पर लटक जाते और वह उन्हें बार-बार हटाने का निष्फल प्रयत्न करता। उसके मुँह पर शिथिलता और कठिन परिश्रम ने अपने चिह्न अंकित कर दिये थे। निद्रा के अभाव के कारण आँखें सिकुड़कर कुछ लाल हो चली थीं। संग्राम में जुटे रहने से तीन दिन से उस्तरा न छुआ था, मुँह पर बढ़ी हुई दाढ़ी ने तो उसे भद्दा बना डाला था। श्रम से शिथिल और भूख से व्याकुल उसका शरीर निर्जीव-सा था, केवल डूबी हुई आँखों में जीवन का क्षीण आभास मिलता था। उसके मुँह में उसकी जीभ सूखे पत्ते की तरह रह-रहकर सिहर उठती, मुँह में तो दो दिन से एक दाना भी न गया था।

उसने अपना ओस से भीगा हुआ सिर ऊँचा कर लिया। उपत्यका में कहीं-कहीं हल्की-सी हरियाली पर्वत-माला को चूमती दिखाई देती थी और कहीं अन्तरिक्ष से मिलती हुई। बरबस ही झटके के साथ उसने अपना मुँह गिरा लिया और अपने दाहिने हाथ की रेखाओं को इस प्रकार देखने लगा जैसे

उन रेखाओं में ही निहित था उनका जीवन-रहस्य—जीवन-लक्ष्य ! सैनिक के शरीर में कँपकँपी-सी हुई। तदन्तर ही उसने एकाएक अपने दाहिने हाथ से रायफल को थाम लिया। वह भी बिल्कुल ठण्डी पड़ गई थी। दिल में आया एक ही क्षण में वह अन्तरिक्ष के पार हो सके, कलनादमत संगीय गाते हुए पक्षियों की तरह। लेकिन तभी उसे अपनी अवस्था तथा कल्पना के सीमाहीन प्रदेश के अन्तर का ज्ञान हुआ।

उसके मन में जो व्याकुलता उमड़ रही थी, घायल पक्षी की भाँति उसे सह सकने में असमर्थ था। उसे यह मालूम न था पर्वत के अंचल में गोला-बारूद के फटने का घननाद हो रहा था। वह उसके शत्रुओं की ओर आकर्षित हो रहा था या अपने अन्य साथियों की ओर। उसे यह कैसे मालूम होता कि जिस लड़ाई में उसके पाँव में हल्की चोट आ गई थी, उसे बन्द करने की घोषणा कर दी गई थी या नहीं। वह तो अपने को एकदम खो बैठा था, उसे ज्ञान था तो इस चीज़ का कि वह संसार में अकेला है, बिल्कुल निःसहाय।

घास से उसे सख़्त नफ़रत होने लगी थी, किन्तु वह इस बात को कैसे भुला सकता था कि उस ऊँची घास ने ही उसके प्राणों की रक्षा की थी। उसे अपने घर की याद आई, उसकी झोंपड़ी के सामने फैले हुए लहलहाते हुए धान के खेतों की। पीपल की छाया में निद्रा देवी की आनन्ददायिनी गोद में अपने को भूलकर वह अपने स्वप्न-साम्राज्य की नींव डालता। हरे खेतों में घूमने पर उसे जीवन की रंगीनियों का स्वाद मिलता। लेकिन इस पीली,

ठण्डी और निर्जीव घास के स्पर्श-मात्र से उसकी सारी संज्ञा सिहर उठती थी।

उसी समय अपनी देर की रुकी साँस को छोड़ तथा झटके के साथ अपना मुँह गिराकर वह अपने हाथों की हथेलियों को फिर देखने लगा। भारी पग उठा और सैनिक आगे को डगमगाने लगा।

रात आई तिमिर का आवरण लेकर। और वह उसी घास में अपनी टाँगों से लिपटकर सो रहा। उसकी खाकी बर्दी ओस से भीग जाने के कारण गोंद की तरह उसके शरीर से चिपक गई थी। अंग-अंग ढीला हो गया था और श्वासों में भारीपन आ गया था। ऊषा ने प्राची पर लालिमा फेर दी। दिवाकर की पहली रश्मियों ने हिमाच्छादित पर्वत-माला का सुवर्ण-रंजन कर डाला था। धान से परिपूर्ण खेतों के पीलेपन पर कहीं-कहीं किरणों की छाप पड़ रही थी। प्रशान्त झेलम का कछार शून्य हृदय खोले पड़ा था। नीचे शीतल बालू में कराकुल चिड़ियों के झुण्ड मधुर कलरव कर रहे थे। उसे स्मरण आया कि यदि वह कुछ और समय के लिए वहीं पड़ा रहता तो निश्चित ही वह घास उसकी मृत्यु-शैया बन जाती।

घास अब इतनी ऊँची न थी कि वह खड़े होकर, नज़रें बचाता हुआ उसके बीच में से चल सके। सैनिक ने तब पेट के बल रेंगना आरम्भ किया। सर्प की भाँति वह घास उसके आकुल कण्ठ और उसकी शिथिल टाँगों से लिपट जाती और वह अपनी रायफल से उसको चीरता हुआ रेंगकर आगे चला जाता।

कुछ समय पश्चात् सैनिक उस खेत के छोर पर आ निकला और दूसरे खेत में घुस गया। वे खुले मैदान, जिन्हें उसने कल कहीं दूर से देख लिया था और जहाँ से वह अपनी भूली हुई राह को ढूँढ़ने का अनुमान कर सकता था, अभी कहीं दिखाई न देते थे। अब वह उस झोंपड़ी के समीप आ गया जिसे उसने कहीं दूर से देख लिया था। बरबस ही वह रुक गया जैसे देर से वह किसी विपरीत दिशा की ओर जा रहा था, इसलिए उससे हट जाने के लिए वह कुछ विचार करने लगा। कुछ क्षण मौन और स्थिर रहने के पश्चात् उसे कुटी के द्वार पर एक व्यक्ति दृष्टि-गोचर हुआ। अनजान पुरुष की वर्दी से स्पष्ट होता था कि वह शत्रु पक्ष का सिपाही है। एकदम सैनिक ने अपनी रायफल को सँभाला और पहली अवस्था में लेटकर घूर-घूर कर देखने लगा। तभी दो और व्यक्ति तृणाच्छादित झोंपड़ी के भीतर से निकल कर द्वार पर आ खड़े हुए।

घास की उस धुँधली-सी दीवार में से उन सिपाहियों को ताकते हुए सैनिक के मन में एक साथ भय और उद्वेग के दो स्रोत बह चले और वह अपनी टाँगों के साथ चिमट गया मौन, संज्ञाहीन। माथे से प्रस्वेद फूट पड़ा और टाँगें अकड़ गईं। वह जहाँ पर था, और जिस प्रकार था, वह फिर भी उसी तरह बैठा रहा। उस समय उसके चारों ओर एक विचित्र कोलाहल-सा उमड़ रहा था और वह समुद्र की एक छोटी-सी तरंग की तरह बार-बार छोर से टकराने और लौट आने का प्रयत्न-सा करता जान पड़ता था। निश्चय ही वह शान्त नहीं था, निस्सहाय था वह।

वह इसी अवस्था में कोई एक घंटे तक आतुर साँसें लेता रहा और जब वे तीनों व्यक्ति सिगरेट जलाकर कुटी के अन्दर चले गये, तब उसने फिर रेंगना आरम्भ किया। कुटी से कुछ ही दूर निकल जाने पर उन तीन सिपाहियों में से एक सिपाही फिर झोंपड़ी से बाहर आया और घास के घने खेत में किसी जीव के चलने से बने हुए मार्ग को देखकर वह कुछ सतर्क हुआ। जल्दी ही रायफल सँभालकर वह भी उसी मार्ग पर पीछे-पीछे चल पड़ा। सैनिक को कहीं भी किसी पगडंडी या मनुष्य-मात्र का चिह्न न दिखाई पड़ा। कभी-कभी उसके पक्ष के या शत्रु दल के मृत सैनिकों की घास से कुछ-कुछ ढकी हुई लाशों पर उसकी नज़र पड़ती। उसके सीने में हल्का-सा दर्द होने लगता।

यह देखकर वह अपने को अच्छा नहीं पाता। जल्दी ही वह उनसे अपना सिर हटा लेता। बार-बार पवन से सरसराती हुई घास उसके माथे पर फूटे हुए प्रस्वेद को हटा देती, उसके कर्कश कानों में कुछ कह देती। क्षुधा ने उदर की पीड़ा का रूप धारण कर लिया था। सैनिक के पास अब कुछ बिस्कुट और आधी बोतल पानी रह गया था। उसने बिस्कुटों और पानी के कुछ घूँटों से अपनी उदराग्नि को शान्त किया, और फिर वह लेट गया नीलाकाश की ओर नज़रें लगाकर। उसकी पलकें खुलकर बार-बार निमीलित हो जातीं और आँखों के खुल जाने के साथ ही उसका स्वप्न-साम्राज्य वास्तविकता के खुरदरेपन में लुप्त हो जाता। कुछ समय तक उसकी चेतना जागती रही, पर्वतमाला पर फैली हुई लालिमा हिलती रही और तब वह तृणों

की शैया पर निद्रा-विलीन हो गया।

सैनिक ने जब अँगड़ाई ली तब दिनकर का प्राची म उदय हो रहा था। प्रकाश की प्रथम रश्मि अपना सुवर्णांचल फैलाए हुए प्रातःकालीन पवन से अठखेलियाँ कर रही थी और तारे पीले पड़कर एक के बाद एक अपना अस्तित्व मिटाते चले जा रहे थे। प्रकृति पतझड़ के शीतल, उल्लासमय समीर सागर में निमग्न हो रही थी। रंगीन बादल थे, और पहाड़ी प्रातः-सन्ध्या अपना रंग जमा रही थी। सैनिक को सूर्य के प्रकाश में असाधारण-सी गरमी का अनुभव हुआ। वह वैसी उष्णता न थी जिसके मजे वह अपने गाँव में लिया करता था। उदयास्त सूर्य-रश्मि में, लम्बी-लम्बी घास में, गगनचुम्बी उन शैलों में उसे कहीं जीवन का आभास न मिलता था। उसने अपने दोनों हाथों से घास को ज़ोर से थामकर देखा, निर्जीव, ओस से भीगी हुई थी वह। दो दिन से लगातार उस घास में, राह ढूँढ़ निकालने के कारण उसकी आँखें भी शिथिल पड़ गई थीं। कभी-कभी किसी सड़े हुए पौदे से आई हुई दुर्गन्ध उसके मस्तिष्क को विकृत कर देती।

सैनिक ने नीचे से दृष्टि उठाकर ऊपर आकाश की ओर देखा और अपनी उस गहरी दृष्टि के साथ उधर ही मुँह उठाये रहा। और तब ही मानो, झटका-सा खाकर अपनी अवस्था के विपरीत बनकर कुछ देर सोचने लगा। उसके अन्तस् में एक भयंकर आग दहक रही थी और शिकारी से भयभीत पक्षी की तरह वह अपने को छिपाने का अधिकाधिक प्रयत्न करने लगा। ओस से भीगी

हुई घास के ठण्डे चुम्बन के कारण उसके सारे शरीर में विद्युत की रेखाएँ-सी दौड़ गईं। चारों ओर उसे छाया पुरुषों का आभास दिखाई देने लगा।

बरबस ही वह चिल्लाया, लड़खड़ाया। नीचे गिरकर उसने उन्मत्त-सा होकर भागने का प्रयत्न किया। लेकिन हाय! वह सूखी घास उसकी टाँगों का बन्धन बनकर उसे अच्छी तरह जकड़ चुकी थी।

उन तीनों सैनिकों ने, जो उसका पीछा कर रहे थे, उसकी जेबों की तलाशी ली। उसके अंग-अंग को टटोला। तब वे रायफल सँभालकर सैनिक से कुछ दूर हटकर खड़े हो गये।

मुक्ताकाश में अन्धकार धीरे-धीरे फैल रहा था। अभी सूर्य की अस्तकालीन लालिमा आकाश के उच्चप्रदेश में स्थित बादलों में गुलाबी आभा दे रही थी। दूर-दूर झोंपड़ियों में दिये जल उठे। काली रेखाओं-सी भयभीत कराकुल पक्षियों की पंक्तियाँ कर्र-कर्र करती हुई सन्ध्या की उस शान्त चित्रपटी के अनुराग पर कालिमा फेरने लगी थीं। लेकिन पर्वतमाला से आती हुई स्वच्छ पवन से सिरसिराती हुई घास के नीचे पड़ा हुआ सैनिक तब भी सोता ही रहा।

६

जहांगीर की अन्तिम घड़ी

"अहा ! वेरीनाग अत्यन्त रमणीय दिखाई पड़ता है ।" खिड़की से बाहर झाँकते हुए जहांगीर ने राजा मानसिंह से कहा।

"हाँ, जहाँपनाह !"––मानसिंह ने सिर हिलाते हुए उनका अनुमोदन किया ।

झेलम का निकास––चश्मा वेरीनाग––संगमरमर की मनोहर भित्तियों और एक सुन्दर उद्यान से घिरा हुआ बड़ा ही आकर्षक था। रंग-बिरंगी मछलियाँ उस गहरे, श्यामल; मीठे पानी के चश्मे में तैर रही थीं। कूदते झरने, उछलते फ़व्वारे, कोमल हरियाली, भाँति-भाँति के पुष्प तथा लतायें उस महकते और चहकते उद्यान की शोभा बढ़ा रहे थे। गगनचुम्बित, हिमाच्छादित शैलों के अंचल में स्थित, चारों ओर वनों से घिरा हुआ उद्यान स्वर्ग-खण्ड-सा प्रतीत होता था ।

अफीम की एक गोली निगलते हुए जहांगीर बोले––"यह बाग मेरी आत्मा है। आज चौथी बार दिल्ली मुझे इस पर्वत-मणि से वापिस बुला रही है। मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध जा रहा हूँ। अल्लाह जानता है, फिर कब आना होगा। हो सकता है, मुझे फिर कभी यहाँ आने का सौभाग्य ही प्राप्त न हो।"

"जहाँपनाह !"

"क्या प्रस्थाने की सब तैयारी हो चुकी ?"--शहनशाह न साईस से पूछा।

"आलमपनाह ! प्रस्थान के लिए सब कटिबद्ध हैं।"--साईस ने करबद्ध अभिवादन करते हुए कहा।

बाग के मालियों, कलाकारों तथा शिल्पकारों को पारितोषिक देकर जहांगीर सवारी की ओर बढ़े। नूरजहां भी अपने हाथी पर सवार थी। जहांगीर सीढ़ी द्वारा उसके हौदे तक पहुँचे। नूरजहां ने परदा हटाया।

"शहनशाह के नयन आर्द्र !"

"हाँ प्रिये, हम वेरीनाग से विदा हो रहे हैं !"--शहनशाह ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

"आलमपनाह ! राजकीय गुत्थियों को सुलझाना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है।"

"ठीक है।"

"फिर हमें चलने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।"

जहांगीर नीचे उतरे और अपने हाथी पर चढ़े। गाँव-निवासियों की भीड़ को चीरती हुई सवारी आगे बढ़ी। वे कश्मीरी ग्राम्य-गीत गा-गा कर शहनशाह की प्रशंसा करने लगे। ग्रामीण उन्हें दयास्वरूप, करुणावतार इत्यादि शब्दों से सम्बोधित कर उनका गुणगान करने लगे। उन्होंने एक मुल्ला को एक हिन्दू कन्या के साथ दुर्व्यवहार करने पर फाँसी दी थी। उन्होंने प्लेग और अकाल के दिनों में श्रीनगरवासियों की बहुत सहायता की थी। गाँव-निवासी ईश्वर से शहनशाह की दीर्घायु के लिए

प्रार्थना कर रहे थे, ताकि वें उनकी बिगड़ी हुई दशा को और भी सुधार सकें। दिलावरखाँ उन गीतों का भावार्थ शहनशाह को सुना रहा था। नूरजहां ने उन कृषकों पर रुपयों की थैलियाँ फेंकीं। उनकी आँखें आँसुओं से भीग रही थीं। उन्होंने सवारी को दूर पहाड़ों के बीच अदृश्य होते देखा।

दूसरे दिन सवारी पाम्पुर के प्रसिद्ध केसर के खेतों के निकट पहुँची। केसर फूल रही थी। केसर के खेतों की प्रत्येक झलक चित्त को शान्ति प्रदान कर रही थी। पथ के एक ओर एक कश्मीरी बाला हाथ में केसर-सुमनों का गुच्छा लिये आगे बढ़ी। वह उन्हें शहनशाह की भेंट करना चाहती थी। जहांगीर का हाथी उस ओर बढ़ा और रुक गया। जहांगीर ने लड़की की ओर संकेत किया। वह आगे बढ़ी और कुसुम उनके हाथ में दिये। दिलावरखाँ, राजा मानसिंह आदि शहनशाह के निकट आये।

"कश्मीर की यह सुन्दर बाला हमारे लिए केसर के फूलों की भेंट लाई है।" जहांगीर ने कहा। "अहा, क्या इससे सुहावनी और कोई भेंट हो सकती है ? राजा, इस लड़की को एक मुहर दी जाय। अहा, यह सुन्दर फूल ! हम इनसे कभी विदा होना पसन्द न करते। यह कुसुमाच्छादित देश सचमुच भूगोल का स्वर्ग है। हमने अपनी तुज्क में इसका बार-बार वर्णन किया है।"

सवारी केसर के खेतों के बीच आगे बढ़ रही थी। जहांगीर अपनी तुज्क में कुछ-कुछ लिखते जा रहे थे। चारों ओर पृथ्वी

केसरिया पुष्पों की चादर-सी ओढ़े थी। यह दृश्य उनकी आँखों में मादकता लाया। उनका दिल खुशी से गुदगुदा उठा। पुरुष तथा स्त्रियाँ प्रवीणता से फूल चुन रहे थे। वे 'बड़शाह' तथा जहांगीर की प्रशंसा-भरे गीत गा रहे थे। दिलावरखाँ इन गीतों का भावानुवाद शहनशाह को सुना रहा था।

"इन लोगों के लिए पुष्प चुनने का श्रम-शुल्क क्या है?" जहांगीर ने दिलावरखाँ से पूछा।

"जहाँपनाह!" दिलावरखाँ ने उत्तर दिया, "इन्हें पंखुड़ियों के तोल का नमक मिलता है।"

"ओह! इन कश्मीरियों के मुँह पीले होने का यही कारण है।"—ग्रामीण लोगों की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "यह स्पष्ट दीखता है कि इन्हें बराबर नमक नहीं मिलता। हमने इनकी दशा सुधारने के लिए भरसक यत्न किया था।"

"वे आलमपनाह की प्रशंसा करते थकते भी नहीं।"—दिलावरखाँ ने कहा।

"जब हम आमिल से मिलेंगे, हमें याद दिलाना। हम इनके लिए नमक का और अच्छा प्रबन्ध करायेंगे।"

"बेहतर, आलमपनाह!"

× × ×

सवारी श्रीनगर पहुँची। नगरवासियों ने कई दिनों से स्वागत का प्रबन्ध कर रखा था। जहांगीर की 'पिरन्दा' किश्ती नगर के बीचों-बीच झेलम नदी में तैर रही थी। दोनों घाट पूर्ण रूप से सुसज्जित थे और घाटों पर निर्मित मकान भीड़

से झूम रहे थे। श्रीनगर का चक्कर काटकर शाही 'पिरिन्दा' झेलम नदी से होता हुआ डल सरोवर में पहुँचा और दिलावरखाँ के महल के सामने घाट पर लगा। यह महल दिलावरखाँ ने उन दिनों बनवाया था, जिन दिनों वह कश्मीर का आमिल रह चुका था। परन्तु अब नया आमिल इतक़ादखाँ वहाँ रहता था।

प्रातः जहांगीर तथा नूरजहां 'शिकारे' में डल सरोवर की सैर को चल पड़े। पन्द्रह हाँजी चप्पू चलाने में व्यस्त थे। वे डल सरोवर की तरंगें, हरि पर्वत, डल के दर्पण जैसे पानी में शंकराचार्य के मन्दिर की परछाईं, उदय होते दिनमणि की सुवर्णमयी रश्मियाँ, वारिद टूकों से सुशोभित आकाश, निशात, शालामार, चश्माशाही आदि उद्यान तथा और भी कई मनोरंजक दृश्य देखने लगे। जहांगीर तथा नूरजहां प्राकृतिक दृश्य में खोये हुए से दिखाई दे रहे थे।

× × ×

दोपहर को शाही सवारी दिल्ली की ओर चल पड़ी। रात शोपियाँ की एक सराय में कटी। पीर पंजाल के पहाड़ों की चढ़ाई दूसरे दिन सवेरे आरम्भ हुई। रात को बर्फ़ भी पड़ी थीं। आगे पाँव फिसलने का भी भय था। जहांगीरशाह हाथी से उतरकर घोड़े पर चढ़े। नूरजहां ने भी ऐसा ही किया।

सवेरे से ही जहांगीर का मुँह कुछ पीला-सा पड़ गया था। नूरजहां ने संशयान्वित उनसे पूछा, तो वे बोले, "आज हमारी तबीयत कुछ ठीक नहीं। कहीं गत मास का ज्वर फिर से सिर न निकाल रहा हो। हम जल्द ही स्वस्थ हो जायेंगे, अल्लाह ने चाहा

तो। मदिरा का एक प्याला बढ़ाओ।"

"ओह ! अल्लाह ! यह दुर्गम मार्ग ! केवल यही एक धब्बा है कश्मीर के मोहक नाम पर। मार्ग कितना बीहड़ है।"

"जहाँपनाह !"—साईस ने कहा, "यदि यह सरायें न होतीं, तो हमें और भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। अबकी बार केवल एक हाथी और दस घोड़े ही मरे। पिछले साल इससे अधिक हानि हुई थी। हम अब बहराम गली पहुँच रहे हैं।"

साईस ने जहांगीर के घोड़े को फिसलने से बचाया। वह ठिठुर रहा था। सर्दी से उसके दाँत बज रहे थे। चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़ दिखाई दे रही थी। कहीं दूर से चीते की गर्जन सुनाई दी।

"दूर से बुला रही है हमें चीते की गर्जन।" शहनशाह न अपनी इच्छा प्रकट की, "हम कई और हिरनों तथा चीतों के सिर अपने साथ ले जाना चाहते हैं।"

"आलीजाह की तबीयत यदि ठीक है, तो···।" नूरजहां ने संदिग्ध अवस्था में पूछा।

बहराम गली की सराय साफ़ दिखाई दे रही थी। कुछ और चलने के पश्चात् वे वहाँ पहुँचे। सराय के पहरेदार तथा कई गोजरों ने बादशाह का स्वागत किया। आकाश भी साफ़ हो रहा था। भगवान् भुवन भास्कर चारों दिशाओं को दीप्तियुक्त बना रहे थे।

"अहा !"—जहांगीर ने आकाश की ओर देखा।

"हमारा दिल खुशी से गुदगुदा रहा है। इस सुन्दर दृश्य में हमने अपने दुःख-दर्द को भुला डाला है। मल्लिका, तुम सराय में चली जाओ, हम शिकार खेलने जाते हैं।"

"परन्तु, जहाँपनाह !" उसने रोका।

"प्रिये, कुछ चिन्ता नहीं, हम अब स्वस्थ हैं। हम जल्दी ही लौट आयेंगे।"

शहनशाह घोड़े पर चढ़े। मानसिंह तथा दिलावरखाँ पीछे हो लिये।

× × ×

बहराम गली के वन में करीमखाँ, एक पहाड़ी गोजर, लकड़ियों का बोझ सिर पर उठाए घर लौट रहा था। वह शहनशाह के दर्शन करने के लिए बेचैन हो रहा था। उसने अपने पाँव की गति तेज़ की। पास ही उसे किसी वनचर के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी। वह रुक गया। उसने इस चीत्कार को पहचानकर कहा, "हिरन !"

वह उस ओर बढ़ा तो उसे एक सुन्दर हिरन दिखाई दिया जो अपनी टाँग को एक झाड़ी से छुड़ाने का निष्फल प्रयत्न कर रहा था। करीमखाँ ने बोझ ढीला किया, रस्सी निकाली और चतुराई से उसे हिरन के गले में फेंक दिया और खींचने लगा। हिरन ने धावा बोल दिया। परन्तु करीमखाँ के एक घूंसे से उसका सिर चकरा गया और दूसरी बार उसे ऐसा करने की हिम्मत न पड़ी। करीमखाँ ने अपनी कुल्हाड़ी से वह झाड़ियाँ काट डालीं और उसकी टाँग को मुक्त किया।

करीमखाँ जीवित हिरन को शहनशाह की भेंट करना

चाहता था। उनसे उसे उचित पारितोषिक मिलने की आशा थी। वह हिरन को खींच रहा था। आगे मार्ग कष्टगम्य था, पत्थर, गड्ढे, खाई आदि बीच में पड़े थे। बहुत नीचे उसे कुछ सिपाही घोड़ों पर सवार दीख पड़े। वह उसी की ओर देख रहे थे। 'क्या वह लम्बा-सा सिपाही शहनशाही वस्त्रों से आभूषित ही जहांगीर है ?' करीमखाँ ने सोचा।

हिरन रुक गया। करीमखाँ ने खींचा, बहुत खींचा, परन्तु हिरन टस से मस न हुआ। उसने फिर खींचा परन्तु यह प्रयत्न विफल ही रहा। उसने अपना समूचा बल लगाकर खींचा तो रस्सी कट गई और करीमखाँ नीचे गिर पड़ा और पत्थरों और खाइयों के बीच वह लुढ़कने लगा।

× × ×

जहांगीर तथा उनके दरबारी नीचे से यह सब कुछ देख रहे थे। उन्होंने उसे हिरन को खींचते हुए देखा था। वे उस पहाड़ी के बिल्कुल नीचे यह सब कुछ देख रहे थे। बेचारा करीमखाँ चट्टानों से टकराता वेगपूर्वक लुढ़क रहा था और ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था। परन्तु कुछ समय के पश्चात् वह चीत्कार भी समाप्त हो गई। उसके शव को नीचे लुढ़कने से कोई न बचा सका।

यह दृश्य शहनशाह के लिए अत्यन्त भयानक था। वे चिल्ला पड़े, "अल्लाह ! अल्लाह ! बेचारे गोजर की रक्षा करो।"

परन्तु करीमखाँ को कोई न बचा सका। गिरते-गिरते उसकी एक टाँग कटकर ऊपर उठकर दूर गिर पड़ी। कितना

वीभत्स था वह दृश्य ! उसकी पगड़ी दूसरी ओर हवा में उड़ गई। कपड़े ख़ून में रंगे हुए चीथड़ों में परिवर्तित हो गये। ख़ून में लथपथ उस गोजर का धड़ गिरते-गिरते शहनशाह के सामने समतल भूमि पर रुक गया।

जहांगीर काँप उठे। उनका सारा शरीर थरथराने लगा और सिर चकरा गया। वे गिरने को थे कि मानसिंह ने उनका हाथ थाम लिया। उन्होंने रुँधे हुए कण्ठ से कहा, "कैसा भयावना दृश्य देखा है हमने, अल्लाह !"

× × ×

शहनशाह का रंग उड़ गया था। दरबारियों ने उन्हें घोड़े पर वापस बहराम गली पहुँचाया। शाही हकीम ने उनकी नाड़ी-परीक्षा ली। रोगी की दशा को सन्देहात्मक बताया। बहराम गली में औषधियाँ प्राप्त न हो सकीं। नूरजहां ने तत्क्षण रजोरी चलने का निश्चय किया।

शहनशाह का हाथी धीरे-धीरे चल रहा था। सम्राट् धीरे-धीरे बोल रहे थे, "कैसा वीभत्स दृश्य हमने देखा ! अपशकुन !"

नूरजहां उनके माथे पर हाथ धरे हुए उन्हें बीती बातें भुलाने को कह रही थी।

सवारी शाम को रजोरी पहुँची। जहांगीर की दशा प्रतिक्षण असन्तोषजनक होती गई। सराय के एक कमरे में शहनशाह अब अन्तिम साँसें ले रहे थे। बरबस ही उन्होंने आँखें खोलीं।

"आह, कश्मीर ! मेरा सर्वस्व !" वे कुछ क्षण चुप हुए। लड़खड़ाती वाणी में फिर बोले—"आँखों में, दिल में, चारों ओर मौत ही मौत दिखाई देती है। मालूम नहीं, इस नश्वर संसार में अब कितनी साँसें और लेनी हैं।

"आलमपनाह ! इस समय आपकी कौन सी चाह पूरी कर सकती हूँ।" नूरजहां के नयन आर्द्र हो रहे थे। वह धीरज धरे हुए थी। जहांगीर ने उसका हाथ चूमा और सीने से लगाए रखा।

"कश्मीर की रक्षा करना। केवल कश्मीर ! कुछ नहीं चाहिए मुझे, केवल कश्मीर ! क···श्मी···र !

मुगल सम्राट् जहांगीर ने कश्मीर-रक्षा-चिन्तन में अन्तिम साँस ली।

७

आर्त

पण्डित शंकरदास ने हुक्के को खींचते हुए अपनी नन्हीं बेटी से कहा–,"मुन्नी, आज तू अपने पिता के गले लगना भूल गई क्या ? तू रोज़ सवेरे सूर्योदय से पहले ही मेरे पास आया करती थी, किन्तु आज सूर्य भी चढ़ आया, और तू नहीं आई मेरे पास।"

पं० शंकरदास सोपुर (कश्मीर) का एक प्रतिष्ठित ज़मींदार था। सारा गाँव उनकी जागीर था और आस-पास के गाँवों में भी उनका काफ़ी सम्मान था। गाँव-निवासी जो प्रायः मुसलमान थे, उन्हें 'पण्डित जी' कहकर पुकारा करते थे। पण्डित जी एक दिव्य मूर्ति थे। चन्दन तथा केसर के तिलक से सुशोभित उनका प्रशस्त, प्रदीप्त भाल, फूले गाल, नुकीली मूँछें, तेजस्वी आँखें आदि उनकी शोभा बढ़ाते थे। किसानों से उनका बर्ताव अच्छा था और वह उनकी एक-एक बात को सुनते और उनका दुःख दूर करने की चेष्टा में लगे रहते। किसान लोग भी उनका बहुत मान और सेवा किया करते।

शंकरदास ने मुन्नी को गले लगाया, उसका माथा चूमा, कपोल-चुम्बन किया, थपकी दी और स्नेहपूर्वक माथे पर हाथ फेरने लगे। मुन्नी उनको एकमात्र पुत्री थी, उनकी आँखों का तारा, उनका जीवनाधार थी वह।

अपने नन्हे हाथों से पिता की पगड़ी सँभालते हुए उसने पूछा, "यदि मैं कल से आपके पास न आया करूँ, तो ?"

"तो मैं तड़पकर मर जाऊँगा, बेटी !" शंकरदास ने उसे गले लगा कर कहा, "तू मेरी आशाओं का भण्डार है, मेरा जीवन है तू ही बेटी !"

खिड़की पर बैठा शंकरदास प्रकृति की सुषमा को निरख रहा था। पतझड़ का प्रभात, चारों ओर अनूठा दृश्य था। लाल-पीले वेश धारण किये हुए चिनार के वृक्ष स्वच्छ, शीतल पवन से विकम्पित होकर झूम रहे थे और अपने पत्तों को गिराते वसुन्धरा की खाली गोद को मानो स्वर्ग-कुसुमों से भरने का प्रयत्न कर रहे थे। खेतों में धान काटते कृषक मधुर कश्मीरी ग्राम्य-गीत गा रहे थे। शंकरदास का दिल गुदगुदा उठा। वह बराबर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे।

सहसा दूर कहीं से बन्दूक की 'दांय' सुनाई दी। 'ओम् नमः शिवाय'—शंकरदास के मुँह से निकल पड़ा यह मन्त्र। उसकी देह में कँपकँपी-सी हुई। उसने खिड़की से बाहर झाँका। पूर्व दिशा में एक मकान धू-धू जल रहा था, आग की लपटें आकाश से बातें कर रही थीं।

"शायद गोविन्द कौल का मकान जल रहा है !" कहते हुए वह सहम गया। उसने अपने खेतों की ओर देखा—किसान तेज़ी से इधर-उधर भाग रहे थे।

तुरन्त ही उसने धुएँ की ओर देखकर कहा, "आख़िर क्या, क्या हुआ ?"

किन्तु उसे इसका उत्तर न मिल सका। "क्या आक्रमणकारी जिनकी चर्चा महमूद ने कल की थी, यहाँ तक आ पहुँचे हैं? क्या रियासती सेना सारी की सारी लड़ाई में काम आ गई?..क्या?"

"पण्डित जी!" आँगन में से आई हुई महमूद की सहमी हुई आवाज़ ने उसका ध्यान-भंग किया। शंकरदास ने आकाश की ओर मुँह करके कहा—"ईश्वर, मेरे स्वामी!" और अपने 'गुरु मन्त्र' का जप करने लगा।

"पण्डित जी, आप मेरे घर में छिप जाइये। लुटेरे यहाँ तक आ पहुँचे हैं, जल्दी कीजिए!" कहते कृषक महमूद ने मुन्नी को स्वयं उठा लिया।

"यहाँ आ पहुँचे?"

"हाँ, पण्डित जी।"

"ओम् नमः शिवाय"—शंकरदास थर-थर काँपने लगा। उसकी टाँगें बैठ गईं, मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, सिर चकराने लगा और माथे पर पसीने की बूँदें फूट पड़ीं। उसने अपने को सम्हालना चाहा। उसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों पर किए गए अमानुषी अत्याचारों के बारे में सुना था। अबाध नर-हत्या, आग, भयानक लूट, स्त्रियों का अपहरण—इस प्रकार के अमानुषी अत्याचार, ऐसे लोमहर्षक कुकृत्य करने वाले लुटेरे, हिंस्र जीव-जन्तुओं से भी अधिक भयानक थे।

"पण्डित जी, जल्दी कीजिए!" महमूद ने दूसरी बार कहा।

"नहीं, हम तुम्हारे घर छिपकर तुम्हारे प्राण संकट में क्यों डालें? हम बचकर तो कहीं नहीं जा सकते, मुफ़्त में हमारे

साथ तुम्हारी जान भी जाएगी। तुम अपनी जान बचाओ।" शंकरदास का स्वर गम्भीर था।

बाहर कोलाहल उमड़ रहा था। मुसलमान और हिन्दू बच्चों का रोदन, अबलाओं की क्रन्दन-ध्वनि और बूढ़ों की पुकार पाषाण को भी पिघला देने में पर्याप्त थी। बन्दूकों की 'दांय' 'दांय' दिशाओं को झकझोर जाती थी। कुत्ते भी अपनी पुकार कोलाहल में मिलाकर उसे और भयानक बना रहे थे।

"नहीं, पण्डित जी, आपको आना पड़ेगा। मैंने उम्र भर आपका नमक खाया है, और अब मुसीबत के वक़्त अपना फर्ज़ निभाना चाहता हूँ। जल्दी कीजिए।" महमूद की आँखों से स्नेह टपक रहा था। उसके वचनों में सेवा के भाव कूट-कूट कर भरे हुए थे। अन्तर की सचाई थी उनमें।

"हट न करो, महमूद। अपने एक सेवक और स्नेही के प्राण संकट में डालने का काम मुझसे नहीं हो सकता। तुम्हारे घर पर छिपने से मैं बच तो नहीं सकता? हमारे साथ अपनी जान गँवा देना मूर्खता के सिवाय और क्या हो सकता है?"

तब ही शंकरदास की पत्नी तारावती भय से व्याकुल, काँपती, लड़खड़ाती वहाँ आ पहुँची। विपत्ति को आते देखकर वह रो भी न सकी—उसकी आँखों का पानी एकदम सूख गया था।

उसे देख शंकरदास पास ही एक अलमारी के समीप गया। एक कोने से एक पुरानी, टूटी हुई तलवार निकाली। उस पर मैल की एक मोटी तह चढ़ आई थी—आलू भी नहीं छीला जा सकता था उससे! थरथराते हाथों से उसने इसे थामा। उसे लगा कि

वह टूटी हुई तलवार जैसे मुस्करा रही थी--उसकी बेबसी और दीनता पर !

"अपने मालिक पर जान निछावर करने का मौका मुझे मिल गया है। अगर आपकी ख़िदमत करते मेरी जान चली जाय, तो मैं अपने को ख़ुशक़िस्मत समझूँगा। पण्डित जी, अल्लाह के लिए अब जल्दी कीजिए। आपके पैरों पड़ता हूँ, पण्डित जी !" महमूद ने पण्डित जी के पैरों पर मस्तक रख दिया।

"जल्दी कीजिए अब।" उसके नयन आर्द्र हो रहे थे।

"ओम् नमः शिवाय।" शंकरदास बराबर इस मन्त्र का जप कर रहा था। बगल में टूटा हुआ खड्ग दबाये उसने थरथराते हाथों से एक छोटी शीशी को खोला, जिसमें थोड़ी-सी सफेद भस्म रखी हुई थी। तारावती ने जान लिया--नृशंस लुटेरों के हाथों अपमानित होने से बचने की एकमात्र दवा। वह शंकरदास के समीप आई और उसके चरणों पर गिर पड़ी। फिर उठकर हाथ बढ़ाया। आँखों से टप्-टप् आँसू गिर रहे थे। शंकर-दास ने थोड़ी-सी भस्म उसके हाथ पर गिरा दी।

"अहा, मैं कितनी सौभाग्यवती हूँ कि मुझे अपने पतिदेव से पहले परलोक-यात्रा करने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है।" अपने आप से कहते हुए उसने वह भस्म चाट ली।

शंकरदास प्रेमपूर्ण दृष्टि से उसके मुख-कमल की ओर देख रहा था। उसका जीवन-साथी उससे सदा के लिए बिछुड़ रहा था, अपने पीछे सुखी जीवन की मधुर याद और अन्तिम घड़ी की एक कटु स्मृति छोड़कर

"पण्डित जी !" महमूद फूट-फूट कर रो रहा था।

शंकरदास ने देखा, तारा अकड़ गई। उसका मुँह पीला पड़ गया। पुतलियाँ उलट गईं, एक हिचकी आई और वह महानिद्रा की गोद में सो गई।

शंकरदास की आँखें भीग गईं। बरबस ही उसने अर्द्ध-खिलित आँखों से आकाश की ओर देखकर कहा, "ओम् नमः शिवाय।"

मुन्नी महमूद की गोद से उतरकर पिता की टाँगों से लिपट गई। खड्ग को नीचे रखकर शंकरदास ने उसे गोद में उठा लिया। माथा चूमकर उसके हाथ पर थोड़ी-सी भस्म गिरा दी।

"यह क्या है पिता जी ?"

शंकरदास मौन था। उसने मुन्नी का हाथ उसके मुँह की ओर बढ़ा दिया। मुन्नी ने जीभ से वह थोड़ी-सी भस्म चाट ली।

उसी समय शंकरदास के नेत्र झरने लगे। उसने अवरुद्ध कण्ठ से कहा, "ईश्वर ! मुन्नी का प्यारा मुँह देखकर भी मेरे हृदय में ममता की तरंग नहीं उठ रही। अपनी बेटी की आप हिंसा करते भी मेरा दिल नहीं छटपटाता, कलेजा फट नहीं जाता मेरा· · ·!!"

बाहर से आये हुए रायफल के भयंकर शब्द ने उसे सचेत-सा कर दिया। उसने उस अर्द्ध-विकसित कुसुम को चूमा, जिसे कुछ क्षण पहले ही उसने पवन में झूमते हुए उठा लिया था, गले से लगाया, आर्द्र नेत्रों से सींचा और नीचे रख दिया—तारावती के शव के समीप।

"पण्डित जी, मौका चूक गया। हाय मेरे अल्लाह ! मैं बदनसीब···।"

"होना था सो हो चुका।"

"आप ही कहीं छिप जाइये। मैं लुटेरों से कह दूँगा कि यहाँ कोई नहीं है। जल्दी कीजिए, पण्डित जी।" महमूद के वचनों में अन्तर की सचाई थी।

"छिप जाऊँ तो मकान के साथ जलकर भस्म हो जाऊँ क्या? नहीं, ऐसा मुझसे न होगा।" शंकरदास ने पास ही अल्मारी से हज़ार-हज़ार के बीस नोट निकालकर महमूद के आगे रखते हुए कहा, "महमूद, तुमने सारी उम्र हमारी सेवा की है। तुम जैसा सेवक और सच्चा मुसलमान मिलना दुर्लभ है। यह तुम्हारा पुरस्कार है, ले लो। मेरे पीछे अब मेरा कोई कुटुम्बी नहीं रहा तुम ही इस धन का उपयोग करो।"

"पण्डित जी!" महमूद बार-बार रो रहा था।

और कोलाहल समीप आ रहा था। शंकरदास ने खड्ग कन्धे पर रखकर महमूद को उठने का संकेत किया। महमूद नोट वहीं छोड़कर सिसकियाँ भरते हुए द्वार के बाहर हो गया। उसने अपने पीछे द्वार बन्द किया। शंकरदास अन्दर रह गया।

बाहर फाटक पर भयंकर आघात हो रहे थे। 'अररर धड़ाम'? अर्राकर फाटक गिर पड़ा।

"ओम् नमः शिवाय"—शंकरदास ने बल-संकलन करते हुए कहा। वह एकाकी टूटा हुआ खड्ग लिये उन अस्त्र-शस्त्र से लस नृशंस लुटेरों का सामना करने में असमर्थ था।

दांय ! दांय !! दांय !!! गोलियों की बौछार हो रही थी बाहर आँगन में। शंकरदास ने महमूद के मुँह से निकले डूबे हुए शब्द सुने, उसके अन्तिम शब्द––अल्लाह ! अल्ला····· ह·····!!"

और उसे अपना अंत भी नज़दीक दिखाई देने लगा।

× × ×

जलते हुए मकानों से उठती आग की लपटें गगन को चुम्बित कर रही थीं। सड़क पर पड़े शवों पर लड़ते कुत्तों की भूँ-भूँ बराबर सुनाई दे रही थी। दूर महमूद की टूटी झोंपड़ी में पड़ी अबला का जीवन-दीपक टिमटिमा रहा था।

और अनुपम निशापति मुस्करा रहे थे।

८

शंकरलाल की दीवाली

श्रीनगर से दूर समीपवर्ती वन में बूढ़ा शंकरलाल निश्चेष्ट अपना कुटी के द्वार पर बैठा किसी की राह देख रहा है। आँखों में विषाद के दो आँसू हैं--सूखे होठों पर मूकता का चिर साम्राज्य। पास बहते झरने की गर्राहट और खगकुल का कलरव उसके कानों में प्रकृति का हृदय-विदारक रोदन-सा लग रहा है। गिरिराज से आते सुवासित पवन के झकोरों की चिनार वृक्ष की प्रशाखाओं में से बहने की धीमी साँय-साँय उसे किसी वियोगी की आहों की याद दिलाती है।

बूढ़े के निराश मन ने मूक-भाषा में बोल दिया। तनिक उसने उड़ती नज़र से अस्त होते दिनमणि को देखा। हिमालय के ऊँचे शिखरों को देखा। ललित मेघ-पुंज को देखा और झटके के साथ अपना मुँह गिराकर कुछ सोचने लगा। लगा, भास्कर अपना सारा बल संकलन कर अपने प्रकाश-पिण्ड से समस्त संसार को पुनः उज्ज्वल कर यामिनी की गोद में सदा के लिए लुप्त होना चाहता है। फिर उदय नहीं होगा उसका, कदाचित् नहीं। उसे प्रतीत हुआ उसकी क्षीण काया अब हिल नहीं सकेगी। तब अँधेरा होगा--चिर शान्ति !

कुटी के पिछले द्वार से निकलकर वृद्धा अरुन्धती--बूढ़े की अर्द्धांगिनी--डगमगाती हुई शंकरलाल के पास आ गई।

कमर झुक गई थी, मुँह और माथे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, सामने बैठी वह बोली, "कब तक बैठे रहेंगे ?"

"कौन ? क्या ?" मुँह उठाकर देखा, "ओह ! तुम—क्यों आई यहाँ ?"

दाहिने हाथ की तर्जनी से अपने श्वेत केशों को सँवारते हुए अरुन्धती ने कहा, "अन्दर चलो, बहुत सरदी है।"

"नहीं, मुझे तो नहीं महसूस होती।" सिर हिलाकर बूढ़े ने अपने कपड़े समेट लिये और न जाने कैसी गुह्य और निर्मम दृष्टि से अपनी कुटी को देखने लगा। घास-फूँस की छत, मिट्टी की भित्तियाँ, काठ का यह टूटा हुआ द्वार—हाँ, जर्जर कुटी चन्द दिन की महमान है। हिम और वर्षा की बाढ़ अब इससे न रोकी जा सकेगी।

"नाथ !"—अरुन्धती बोली। शोक से मद-मत्त होकर शंकरलाल ने कहा, "क्या है, क्या ?"

"अन्दर चलिए !"

"नहीं जा सकता मैं, तब तक नहीं।"—भौहें तानकर और विरोधपूर्वक सिर हिलाते हुए उसने कहा। फिर गहरी नज़र के साथ श्रीनगर को जाने वाली पगडंडी की ओर देखने लगा। दूर तक कोई पथिक दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। कभी कोई पाहरू कुता पथ काटकर धान के एक खेत से दूसरे खेत में उछल कर चला जाता, शेष सब निर्जीव-सा दिखाई पड़ता था। बूढ़े ने सोचा—जिसका दिल रोता है, सारी दुनिया उसके लिए शून्य बन जाती है

"मकुन्द मेरा भी पुत्र ही था। यदि वह दैव को प्यारा हो गया, तो हमारे बस की कौन-सी बात ?" रुँधे कण्ठ से वह बोली।

"मकुन्द मेरा सर्वस्व था, मेरा प्राण !"—उसे लगा उसकी छाती में जो दिल है, जमकर बर्फ बनता जा रहा है।

"नहीं उठूँगा मैं, मकुन्द आए तो !"

उसका गला भर आया। वह गला फाड़कर रोता लेकिन, हाय ! उसकी आँखों का पानी भी एकदम सूख गया था।

"नहीं आएगा वह मेरा लाल !"अरुन्धती की आँखों से उष्ण अश्रुधारा बह चली। अपने फिरन के अँचल से आँसू पोंछते हुए उसने कहा, "अधिक शोक व्यर्थ है। कल रात से आप इस द्वार पर शोकाकुल बैठे हैं। मेरा भी कुछ ध्यान है आपको ? हाँ, दोनों का सहारा था, स्वप्न था वह ! बूढी उम्र में जब आँखों की रोशनी भी जा रही है, हम दोनों की कमर टूट गई ! किस पाप का फल है यह ?"

बूढे की आँखें फिर उस पगडंडी पर किसी को ढूँढने लगीं। वही मकुन्द जो कुछ ही मास पहले उसकी ज़िन्दगी के बाग में पक्षी बनकर चहकता था, उससे सदा के लिए बिछुड़ गया। अपना होकर भी, हाय ! उसका मकुन्द—उसका प्राण—उसका नहीं रहा। नहीं कह सकता वह अब कि मकुन्द उसका बेटा है, उसकी आँखों का तारा ! उसने सोचा उसकी पैंसठ साल की पूजा का उसे यही फल मिला। उस लीलामय, सकल गुणगर्णाणव की दिव्य लीलाओं, परम पावन गुणों का चिन्तन

कर, शंख, घंटा, बजा-बजाकर उसने कुछ नहीं खोया, कुछ नहीं पाया। आज इतने वर्ष से वह अपने देवी-देवताओं को नहीं मना सका है। नहीं कह सका वह उनको अपने दिल की बात।

"सन्ध्या हो रही है, ईश्वराधना में कुछ क्षण अपने को लीन कीजिए।"—अरुन्धती ने सारी झोंपड़ी गोबर से लीप डाली थी।

और तब ही मुन्नू, वह ग्वाल-बाल हाथ में एक सेब लिये दौड़कर आया और शंकरलाल के सामने खड़ा हो गया।

"शंकरलाल, आज कितने दीप जलाओगे तुम ? मैं पूरे इक्कीस जलाऊँगा।"—वह बोला।

"क्या कहा ? दीप ?"—शंकरलाल ने एक दीर्घ निःश्वास ली। पगडंडी से आँखें बरबस ऊपर उठकर मुन्नू के मुँह पर रुक गईं।

नहीं जला सकेगा वह दीप। वह बूढ़ा खुशियाँ नहीं मना सकेगा। आज उसके अन्तस् में छिपा हुआ मन, उसका व्यथित प्राण, उसके दुःखी जीवन के तट से टकराकर उसे अतिशय विकल बना रहा है।

"नहीं बोलोगे लाला ?"—अपने दाँतों से सेब काटते हुए मुन्नू ने पूछा।

शंकरलाल का ध्यान भंग हुआ। "क्या ?" उसके होठों ने तनिक फड़फड़ा दिया।

"वहीं !"

"आखिर ?"

"दीपों की बात !"

"दीप? दीप ? क्या है आज ?"—विक्षिप्त स्वर से वह बोल उठा ।

"दीवाली—लाला !"

बरबस ही बूढ़े ने अपना मुँह गिरा लिया । पवन सिरसिरा कर वृक्षों की टहनियों में से बहने लगा, मानो पतझड़ की उस शाम को शुष्क शाखाएँ सूखे किसलयों के गिरने पर विरह-विलाप कर रही हों। वसुन्धरा की खाली गोद सूखे पत्तों से भरी जा रही थी । बूढ़े ने तब सिर उठाकर दूर तक फैली हुई लालिमा को देखा, पर्वतों की श्याम रेखा को देखा और देखा फैले हुए धान के खेतों की ओर ।

"दीपावली है आज, सुना आपने ?"—बूढ़ी ने कहा ।

"मेरे लिए ?"—अविचलित भाव से बूढ़े ने कहा और अपना मुँह मुन्नू की ओर कर लिया ।

"निशा-सुन्दरी की सुहाग रात !"

"सुहाग रात ?"—करुणाजनक लोचनों में राशि-राशि विस्मय के भाव भरकर बूढ़े ने पूछा ।

"हाँ !"

बूढ़े ने तब डल सरोवर के पश्चिमी तीर पर स्थित जगमगाते श्रीनगर की ओर देखा—नन्हें-नन्हें मकानों की खिड़कियों पर दीपशिखाएँ हिलकोरें ले रही थीं । सरोवर में उनका प्रतिबिम्ब पड़ जाने से पानी के बीच एक सुकुमार सृष्टि का निर्माण हो चला था ।

"आज ही मानव को वरदान मिला था।"—अरुन्धती का स्वर गम्भीर था।

"किसने दिया था वह वरदान ?"

"लक्ष्मी ने !"

"आज़ देंगी किसी को ?"

"हाँ, जिसे चाहें।"

"जिसे चाहें.....!"

शंकरलाल ने मुँह ऊपर उठाकर आकाश की ओर देखा। बरबस ही उसके मुँह से निकल पड़ा—"जीवन क्या ? इसका अन्त !" लगा उसकी नजरों से आकाश फट जाएगा।

"आज ही तो माता कौशल्या के निराश जीवन में श्रीराम आशा का दीप बनकर आए थे, उसके दिल की सूनी वाटिका में लक्ष्मण पक्षी बनकर चहके थे।"

"तो क्या करूँ मैं—क्या ?" झटके के साथ अपना मुँह गिरा कर बूढ़े ने उठने का प्रयत्न किया।

× × ×

चारों ओर से केशर, चन्दन आदि की सुगन्ध की लपटें आ रही थीं। सुकोमल कण्ठों से निकली हुई कीर्तन-ध्वनि से दिशाएँ निनादित हो रही थीं। व्योम में नक्षत्रों के विस्तार के साथ घर-घर दीपमालिका जगमग हो उठी थी। और तब अरुन्धती ने कुटी के भीतर जाकर देखा—राम की प्रतिमा के सामने हाथ में जलता हुआ दीपक ले और धरती पर अपना मस्तक रखकर शंकरलाल फूट-फूट कर रो रहा था।

९

निशात बाग़ का नायक

"कल शहनशाह शाहजहां हमारे बाग़ की शोभा बढाने आयग ।"—आसफअली ने अपने खिदमतगार से कहा, जिसका ध्यान हुक्के की ओर था। "नृत्य और मदिरा का प्रबन्ध तुमको आज ही करना होगा। बाग की सबसे ऊँची बारादरी को भी सजाना होगा।"

"हाँ, जहांपनाह !"—खिदमतगार जाफर ने झुककर कहा, "मैं अपनी ओर से भरसक यत्न करूँगा । शहनशाह ने मुझ पर दया की है। शायद वे ऐसा न करते, यदि आप बीच में न पड़ते।"

"हमें उस भूत की याद न दिलाओ, जब तुम किसी बादशाह के यहां नौकरी किया करते थे, जो मुगलों के विरुद्ध था। यह भला हुआ कि हमने तुमको पा लिया। तुम हमारे अनमोल मोती हो। हमें तुम पर गर्व है। अच्छा तुम अब जाओ। सारे फव्वारे कल चलने चाहिएँ, प्रत्येक फूल खिला होना चाहिए। निशात बाग शहनशाह की प्रशंसा योग्य बनना चाहिए।··· अब तुम जाते क्यों नहीं ?"

जाफर ने झुककर प्रणाम किया और चला गया। आसफ-अली तब अपना हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। निशात के बीच की

बारादरी में बैठकर वह हरे-भरे, महकते और चहकते निशात बाग, हरि पर्वत, डल के दर्पण-जैसे पानी में शंकराचार्य की परछाईं और भी कई मनोरंजक दृश्य देखने लगा। हजारों शिकारे और डूँगा-किश्तियाँ डल के हृदय को चीरती दिखाई देतीं। वह इन्हीं के ध्यान में खो गया। कमल के पुष्पों और पत्तों की शोभा ने तो उसके दिल को हर लिया। उसकी आँखें खिल उठीं और दिल खुशी से गुदगुदा उठा।

परन्तु कल नृत्य कौन करेगा ? आसफअली का ध्यान भंग हुआ। हुक्का गुड़गुड़ाया, तो कुछ समय के पश्चात् उसे याद आया—हाँ, मालती नृत्य करेगी। उसे एक राजपूतनी का वेश धारण कराया जाएगा। वह शहनशाह की आँखों में मादकता लायेगी। विपत्तियों की मारी युवती मालती एक उच्च कुल की राजपूतनी थी। उसकी आँखों में मोहकता थी। जो कोई भी उसे देखता, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा किये बिना न रहता। लोगों में यह चर्चा थी कि वह जाफर, एक कुलीन पठान के साथ प्रेम करती है। आसफ-अली भी उसकी सुन्दरता, चतुराई और तीव्र बुद्धि को सराहता था। एक बार उसने सुना कि जाफर की आँख उससे लड़ गई है, तब से उसने मालती की ओर अधिक ध्यान न दिया। जाफर के लिए उसके दिल में बहुत आदर था। वह जाफर और मालती की एक बात से अधिक खुश था, कि दोनों निशात बाग के इच्छुक थे—उतने जितने उसके कुटुम्बियों में से कोई न था।

× × ×

निशातबाग की सबसे ऊँची बारादरी शहनशाह शाहजहां के स्वागत के लिए पूर्ण रूप से सुसज्जित थी। शहनशाह अपने सामन्तों और बेटी जहांआरा समेत निशात बाग के सज्जित घाट पर नियत समय से कोई एक घंटा देर में पहुँचे। शाही डूंगे से घाट पर पग धरते ही शहनशाह ने आसफअली के स्वागत के उत्तर में कहा, "हमें आज निशात देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। हमने तुम्हारे निशात की बहुत प्रशंसा सुनी थी। हमारा शालामार तो अभी पूरा न हो सका।"

निशात के निर्माणकर्त्ता आसफअली को अपने बाग पर बहुत गर्व था, परन्तु शहनशाह के सामने इस बात को प्रकट नहीं कर सकता था। शहनशाह ने भी उसके मुकाबले में शालामार बाग बनवाने की ठानी थी। आसफअली ने झुककर कहा—"जहांपनाह, शालामार के पूर्ण रूप से निर्मित हो जाने पर निशात तो तुच्छ रह जायगा।"

निशात की पहली झलक पाकर ही शाहजहां की आँखें चौंधिया गई। उन्होंने निशात के ऐसे सौन्दर्य का स्वप्न भी न देखा था। वह आसफअली की बातों को व्यंग्य समझ बैठे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा, मगर कहा कुछ नहीं। और शाहजहां कभी अपने अपमान को भूलता नहीं।

शहनशाह ऊपर की बारादरी में चले गये। सूर्य भी अब डूबने को था। वह दृश्य उसे कितना सुहावना दिखाई दिया। जीवनभर उसे ऐसा दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ था। डूबते सूर्य की लाल-पीली किरणें चारों दिशाओं को

लालिमा के रंगों में रंग रही थीं। लाल मेघ के टूक दूर पर्वत को घेरे, नांगा पर्वत के उच्च शिखिर को छिपाते, डल के दर्पणरूपी जल में अपनी शोभा निरख रहे थे। मदिरा की घूँट भरते हुए शाहजहां ने आसफअली से कहा, "आसफअली, तुम्हारे बाग जसा और कहीं भी डल का ऐसा मनोरंजक दृश्य नहीं दीखता। यह उछलते फव्वारे, यह कूदती आबशारें, यह हँसते पुष्प और लताएँ, डल का आइना जैसा पानी और उस ओर सुवर्णमयी रश्मियाँ! काश, मैं इस पर एक कविता लिखसकता!"

"जहांपनाह अधिक प्रशंसा कर रहे हैं।"—आसफअली ने लज्जित होकर कहा—"यह बाग आलीजाह के गुलाम, जिसको हजूर ने कश्मीर का आमिल बना दिया है, का बनाया हुआ है। और जाफर के कारण ही यह बाग ऐसी दशा में है। जाफर को जहांपनाह ने ही तो जीवन-दान दिया था।"

शाहजहां ने आँखों की पलकें जरा ऊपर उठाकर कहा, "हाँ, तुम्हीं ने उस समय उसके जीवन-दान के लिए प्रार्थना की थी। मगर, आसफअली, सावधान रहना! उसकी रगों में पठानी खून है। ··· शायद वह तुम्हारी सेवा अच्छी प्रकार करता होगा?"

"हाँ, जहांपनाह, वह बड़ा स्वामि-भक्त और विश्वासपात्र है। मुझे उस पर गर्व है।"

× × ×

यहाँ से विदा होकर शाहजहां अपने शालामार बाग में चले गए। उनकी इच्छा थी कि यह बाग भारत का अनुपम

उद्यान बने। हजारों शिल्पकार तथा कलाकार बाग बनाने में व्यस्त थे। शहनशाह उनके काम को सराहते और उन्हें पुरस्कार भी देते, लेकिन कुछ मायूसी की हालत में। एक दिन जब वह बाग में सैर कर रहे थे, जहांआरा ने उनसे पूछा, "किबला आलम! आप शोकाकुल-से क्यों दीख पड़ते हैं?"

कुछ क्षण सोचने के बाद शाहजहां ने उत्तर दिया, "स्नेह-मयी! हमारी अभिलाषा है कि निशात हमारा होकर रहे। हमने आसफअली से संकेत किया था कि हमें निशात बाग की भेंट पसन्द है। उसने यह तो समझा परन्तु इन सात दिनों में उसने हमारी इच्छा पूरी करने की कोई चेष्टा नहीं की। वह ऐसा नहीं करेगा।"

जहांआरा अपने पिता को संसार की किसी भी वस्तु से प्रिय समझती थी। उसे ऐसा सुनकर खेद हुआ। ढाढस बँधाते हुए उसने अपने पिता से कहा—"किबला आलम! निश्चिन्त रहिए। आसफअली आपकी इच्छा पूरी करके रहेगा।"

शाहजहां का हृदय दग्ध हो रहा था। दाँत पीसते हुए उन्होंने कहा, "आसफअली का बाग कोई और दम सुन्दर न दिखाई देगा। हमारी नहर ही उसके बाग को पानी देती है। हम उसे अभी बन्द करवा देते हैं।"

शहनशाह ने माली को बुलवाया और उसे नहर बन्द करने की आज्ञा दे दी।

× × ×

निशात बाग का जीवन-तार टूट गया। जाफर और मालती

ने पहले-पहल नहर को सूखते देखा। उनका विवाह कुछ ही दिन पहले इसी बाग में हुआ था। बहुत खेद हुआ उन्हें ऐसा देखकर। झट आसफअली को यह समाचार सुनाया। उसने इस ओर अधिक ध्यान न देते हुए कहा, "शहनशाह हमारे उद्यान पर मोहित है। निशात मेरा जीवन है। मैं इससे विदा नहीं हो सकता। उन्हें इसे सुखाने दो।"

मालनी की आँखों में आँसू भर आये। जाफर भी बाग के उजड़ेपन और स्वामी के शोक को सहन न कर सका।

निशात अपना सौन्दर्य खोने लगा। पुष्प मुरझाने लगे। फुलवारियाँ ऐसी दिखाई देने लगीं, जैसे सूखे-काठ के ढेर। चहचहाते पक्षी भी बाग से अपना बसेरा ले चले। चिनार के पत्तों और अन्य वृक्षों ने अपना रंग बदल डाला।

आसफअली अपनी बारादरी की खिड़की से सामने डल पर दृष्टि डालता। बहुत-सी किश्तियाँ तैरते देखता, लेकिन सभी शालामार की ओर।

जाफर ने चिलम में आग रखी और कहा, "मेरे आका, मैं अब निशात की ऐसी उजड़ी हुई दशा को नहीं देख सकता। वह किश्तियाँ शालामार बाग को सुन्दर बनाने के लिए संग-मरमर ले जा रही हैं, और हमारा निशात पानी की बूँदों के लिए तरस रहा है! शहनशाह निर्दय हैं। वह ..... !"

"जाफर, शहनशाह की शान में बुरे शब्द मत कहो!" आसफअली ने उसे फटकारा। "जाओ, हमें अकेले रहने दो!"

जाफर चला गया। वह गुस्से में आप से बाहर हो गया था।

बाग के एक कोने में वह अपने डेरे में चला गया। रास्ते में गुलाब का एक पुष्प भी तोड़कर ले गया और मालती को दिखाते हुए उसने कहा, "मालती, देखो इस गुलाब की मुर्झाई हुई दशा! अभी और कितने समय के लिए यह फूल यूँही मुरझाते रहेंगे? अभी और कितनी देर हमारे स्वामी को शोक की घड़ियाँ बितानी पड़ेंगी? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होता रहेगा ·····!"

"परन्तु हम कर ही क्या सकते हैं?"—मालती ने उसके हाथों से पुष्प छीनकर कहा, "शहनशाह की तो यही चाह है।"

"नहीं, नहीं, वे इसे कभी नहीं सुखा सकेंगे। मैं आज रात बाग की तृषा मिटा दूँगा, चाहे मेरे प्राण ही क्यों न चले जायँ।"

"नाथ! वह कैसे हो सकेगा? यह सचमुच पागलपन है। यदि हम कुछ देर के लिए बाग को पानी देने में सफल भी हो जायँ, तो भी शहनशाह फिर से बन्द करवा सकते हैं और बदले में दण्ड स्वरूप आपके प्राण भी ले सकते हैं। यह सब निरर्थक है।"—मालती ने सिर हिलाते हुए कहा।

"ऐसा मत कहो, मालती! यदि पानी केवल एक रात के लिए आये, तो भी मैं निशात की प्यास बुझा दूँगा। यह हमारी आत्मा है, जो प्यास से तड़प रही है। हमें इसकी पिपासा शान्त कर देनी चाहिए। मेरी पठान-बुद्धि मुझे ऐसा ही करने का परामर्श देती है। मैं ऐसा करूँगा और अवश्य करूँगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल आसफअली अपने हुक्के के कश ले रहा था। उसके कानों में कुछ ध्वनि हुई। बुलबुल, मैना, कोयल आदि बाग में फिर से कलरव कर रहे थे। फिर से

खिले फूलों की सुगन्ध से उसका दिमाग महक उठा। यह क्या! उसने बाग की ओर देखा। फव्वारे उछल रहे थे। प्रातःकाल के सूर्य की किरणें ओस की बूंदों को मोतियों के समान चमका रही थीं। माली बाग को सुशोभित करने में व्यस्त थे। आसफअली ने ताली मारी। एक नौकर अन्दर आया, तो उसे आज्ञा दी, "बड़े माली को अन्दर बुलाओ!"

नौकर जाफर को साथ ले आया। वह ऊपर से नीचे तक कीचड़ में लथपथ एक कश्मीरी मजदूर के समान प्रतीत होता था। दोनों ने झुककर प्रणाम किया। नौकर ने कहा, "हुजूर! बड़ा माली वहाँ न था। उसकी जगह जाफर काम कर रहा था, उसे ही बुला लाया हूँ।" ऐसा कहकर नौकर चला गया।

"क्या शहनशाह ने हमें पानी बख्शा है? हम बहुत खुश हैं। शहनशाह, जैसा हमने कहा था, अपने पिता के समान ही दयाशील हैं!"— आसफअली ने प्रसन्न होकर कहा।

"किबला!"—जाफर ने झुककर कहा, "मैं कल रात पानी लाया हूँ। मैं निशात को और सूखते नहीं देख सका।"

"तुम?.....तुमने ऐसा किया है?"—आसफअली गुस्से से गरज उठा —"जहांपनाह हमसे नाराज तो हैं ही। अल्लाह जानता है अब क्या होगा!"

दरबान धीरे-धीरे अन्दर आया। उसका सारा शरीर काँप रहा था। अभिवादन करने के पश्चात् वह कहने लगा, "शहनशाह आलम ने हुजूर के लिए गाड़ी भेजी है। वह हुजूर से अभी मिलना चाहते हैं।"

यह सुनकर आसफअली ने केवल इतना कहा, "तो यह लो जाफर!" हुक्के की नली को फेककर एक चोगा और एक सरदारी पगड़ी बाँध जल्दी से कुछ नौकरों समेत गाड़ी पर हो लिया।

× × ×

शाहजहां शालामार बाग की संगमरमर की बारादरी पर विराजमान है। जहांआरा भी शहनशाह की बाईं ओर बैठी हैं। आसफ़अली भी पहुँचा और प्रणाम करके बैठ गया। उसके आने पर शाहजहां ने ऐसी सूरत बनाई कि आसफ-अली समझ गया कि दाल मे कुछ काला है। शाहजहां ने कुछ वाक्य कश्मीर की जलवायु और शालामार के बारे मे कहे और फिर बरबस ही कह डाला—"आसफअली! क्या हम जान सकते हैं कि तुमने कैसे हमारी आज्ञा के बिना निशात बाग को पानी दिया, जो कि हमने केवल अपने बाग के प्रयोग के लिए रखा था?"

आसफअली ने सिर झुकाया। वह शाहजहां के गुस्से से लाल मुँह की ओर न देख सका। बोला, "जहांपनाह, मेरे एक नौकर।"

द्वारपाल अन्दर आया और कहा कि जाफर अन्दर आने की आज्ञा माँगता है। शहनशाह ने कहा, "उसे अन्दर आने दो!" उनकी आँखें आसफअली पर टिकी हुई थीं।

जाफर ने कपड़े बदल लिये थे। वह निस्सन्देह सुन्दर लगता था। झुककर उसने कहा, "जहांपनाह! मुझे ज्ञात है कि मेरे आका क्यों यहाँ बुलाए गए हैं। मैं यह निवेदन करने आया हूँ कि उन्हें इस बात का कुछ भी पता नहीं। निशात को वास्तव मे

कल रात मैंने पानी दिया।"

"तुम!"—शहनशाह ने गुस्से से कहा—"तुम, जाफर! ढीठ! तुम अब दूसरी बार हमारे विरुद्ध उठ खड़े हुए हो! मुझे इस बात का ज्ञान न था कि तुम्हारा पठानी खून फिर उबाल खाएगा। अब तुम जीवित नहीं रह सकते! अब कोई तुम्हारे प्राण बचाने के लिए बीच में न पड़ेगा। द्वारपाल, तीन सिपाहियों को बुलवाओ! उन्हें आज्ञा दो कि जाफर के हाथ-पैर बाँध दें और जल्लाद को भी आने की आज्ञा दो!"

जाफर मूर्तिवत् खड़ा रहा। उसने धीमे स्वर में कहा, "जहांपनाह! मै मरने से नहीं डरता—और वह भी निशात के लिए, जो मेरे जीवन का आधार है।"

"इस बागी कुत्ते का मुँह बन्द कर दो!"—शाहजहां ने दाँत पीसते हुए कहा, "तुम्हें तो आज से पहले ही मार दिया जाना चाहिए था।"

सिपाही अन्दर आये तो शाहजहां ने आज्ञा दी, "इस जलील पठान को उस चिनार के साथ बाँध डालो, जब तक जल्लाद आ जाय। नहीं, नहीं, चिनार के साथ नहीं, उस तूत के वृक्ष से बाँध डालो, जो इसी के समान दुष्ट है।"

जाफर बाँधकर ले जाया गया। द्वारपाल भीतर आया और बोला, "अल्लाहपनाह! एक औरत, जो अपना नाम मालती बताती है, हुजूर की दरगाह में आने की आज्ञा माँगती है।"

"यह मालती कौन है, आसफअली?"—शाहजहां ने क्रोध-पूर्वक हँसी से कहा। आसफअली की गर्दन अब भी झुकी हुई थी।

"जहांपनाह, वह जाफर की औरत है।"

"ओह! इस जलील पठान ने तुम्हारी सबसे अच्छी और सुन्दर नर्त्तकी से शादी भी कर ली है आसफअली!"—और फिर द्वारपाल की ओर देखकर कहा, "उसे आने दो!"

कुसुमित बेलि के समान नाजुक तथा हिरन की जैसी आँखों वाली, अभी अपने पति के दण्ड से अपरिचित, मालती आगे बढ़ी और शाहजहां को प्रणाम किया। अपने पति को वृक्ष से बँधा देखकर कुछ देर हतप्रभ हुई। इसे देखकर स्वयं शहनशाह भी चुप हुए। प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर देखने लगा। शहनशाह से उसने प्रार्थना की, "आलीजाह, मुझे यह कहने दीजिए कि मैं भी उस समय जाफर के साथ थी, जब उसने नहर का पानी निशात की ओर प्रवाहित किया।"

"तो तुम भी ऐसी ही हो।"—शाहजहां की आँखें लाल हो उठीं—"उस पठान विद्रोही के रक्त ने तुम्हारे राजपूती खून में भी उबाल ला दिया है। तुम भी, अभी इसका फल भुगतोगी। तुम्हारी सुहाग रात का चिराग अभी बुझ जायगा। सिपाहियो! इसे भी बन्दी बनाओ। क्या अभी जल्लाद नहीं आया है?"

सिपाहियों ने झुककर जल्लाद की ओर इशारा किया, जो एक भारी खड्ग कन्धे पर उठाये आ रहा था। शाहजहां ने उसे अपने पास बुलाया और आज्ञा दी—"इन दो बन्दियों के मस्तक अभी उड़ा दो, ताकि प्रजा यह सबक सीखे कि हमारी इच्छा के विरुद्ध चलने का क्या परिणाम होता है।"

ज्यों ही मालती को जाफर के पास ले गये, त्यों ही एक

सरदार उठ खड़ा हुआ। झुककर उसने कहा, "आलीजाह, ! मैं कुछ निवेदन करने की आज्ञा माँगता हूँ।"

"हाँ, हाँ, बोलो।"

"जहांपनाह ! बन्दियों को तो अब कत्ल होना है, पर रिवाज के अनुसार इन्हें अपनी अन्तिम इच्छाओं को पूरा करने का अवसर मिलना चाहिए।"

"हाँ, इनसे पूछो।"

सरदार ने जाफर से पूछा, "जाफर, न्याय के अनुसार हम तुम से तुम्हारी अन्तिम इच्छा पूछते हैं।"

ऐसा सुनते ही जाफर झट बोल उठा, "जहांपनाह ! क्या मेरी अन्तिम इच्छा अवश्य पूरी हो जाएगी ?"

शाहजहां ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"हाँ, मुगल बादशाह जो कहता है, उसे पूरा करके रहता है।"

जाफर के बन्धन ढीले छोड़ दिये गये। वह शहनशाह के सामने आकर झुका, "जहांपनाह, मेरी अन्तिम इच्छा यह है कि निशात को सदा उसी तरह पानी मिलता रहे, जैसे पहले मिला करता था।" उसने इतना ही कहा था कि मालती बोल पड़ी — "जहांपनाह ! शायद मुझसे भी मेरी अन्तिम इच्छा पूछी जायेगी मेरी भी यही इच्छा है कि निशात बाग सदा हरा-भरा रहे।"

जाफर की निडरता तथा मालती की निर्दोषता और साहस का सब पर बहुत ही प्रभाव पड़ा। आसफअली और सरदारगण सभी कुछ समय के लिए मौन रहे। शाहजहां का गुस्सा उतर गया। उन्होंने मस्कराकर कहा, "तुम धन्य हो जाफर !

तुम वास्तव में वीर हो ! स्वामि-भक्त हो । हम अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकते । तुम्हारी इच्छा पूरी होकर रहेगी । और तुम्हारी भी, मालती ! निशात को सदा पानी मिलेगा । तुमने हमारी आँखें खोल दीं ।"

शाहजहां ने आसफअली की ओर देखकर कहा, "आसफ-अली, हमारे सामने मुँह नीचा न करो। तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें ऐसे नौकर मिले हैं । यह सचमुच तुम्हारे नमकहलाल हैं । इनकी रास्तबाज़ी और सचाई ने हम पर जादू कर दिया है । हम इन्हें क्षमा करते हैं। इनको जीवन-दान दिया जाता है । ऐसे रत्न अमर रहेंगे !"

"हम आज्ञा देते हैं"····शाहजहां ने सिपाहियों की ओर देखकर कहा, "इन बन्दियों को मुक्त किया जाय !"